प्रकाशक
पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (बिहार-प्रान्त)

भूमंडल-यात्रा का सचित्र वृत्तान्त

दुनिया की सैर

लेखक—श्रीयोगेन्द्रनाथसिंह
प्रकाशक—पुस्तक-भंडार

मुद्रक
ओमप्रकाश कपूर
लक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी
विक्रम संवत् १९९८, सन् १९४२ ई०
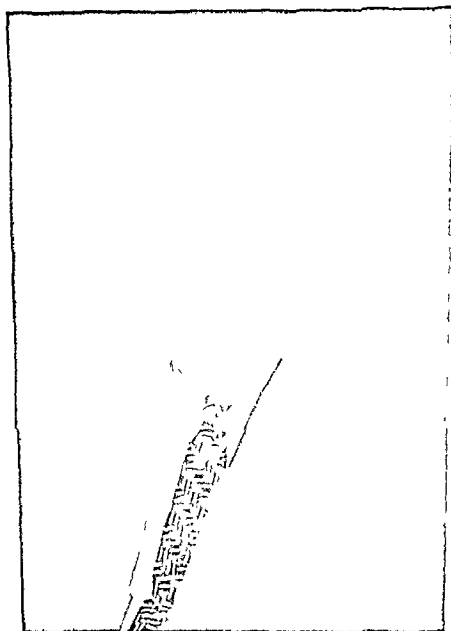
कर्नल सर कैलासनारायण हकसर, सी० आई० ई०

सादर समर्पण

मध्यभारत के उन महनीयकीर्त्ति महानुभाव के

पुनीत कर-कमलों में

जिनकी असीम कृपा और स्नेहाकर्षण के

वशीभूत हो

विशाल उदधि की उत्ताल तरंगों पर दोलायमान होता
हुआ उस पार की स्वर्गीय सुषमा के दर्शन
करने का सौभाग्य प्राप्त कर सका

कृपाभाजन

'सूर्य'

भाषा पर पंडितजी का विशेष आधिपत्य है। शब्द आपके इशारों पर नाचते हैं। आशा है कि विषय की रोचकता, भाषा के सौष्ठव तथा उपमाओं के अनूठापन के कारण पुस्तक की गणना उच्चकोटि के साहित्य में होगी।

पुस्तक पढ़ते समय अनायास ही स्वीडन की प्रसिद्ध लेखिका सेल्मा-लागरलफ का स्मरण हो आता है, जिन्हें भूगोल-जैसे नीरस विषय पर रोचक ग्रन्थ लिखने के उपलक्ष में 'नोबल'-पुरस्कार प्रदान किया गया था।

पंडितजी की यूरोप-यात्रा के समय (सन् १९३७ ई०) की राजनीतिक परिस्थिति पुस्तक के महत्त्व को विशेष रूप से बढ़ाती है। इटली एबिसीनिया को हड़प कर चुका था। जिस दिन पंडितजी का जहाज सिसली के पास से गुजरा, उसी दिन मुसोलिनी ने वहाँ से सिंह-गर्जना कर संसार को ललकारा था; और उसी रात भू-मध्यसागर में उत्पात-सूचक 'रक्ताक्त' चन्द्र दिखाई दिया था। यह तूफान के आने से पहले की निस्तब्धता थी। हिटलर अपने तांडव-नृत्य की तय्यारी कर रहा था।

पुस्तक एक ऐसे यूरोप का चित्र है जो उस रूप में देखने में कभी न आयगा।

जो लोग यूरोप हो आए हैं, पुस्तक उनकी सुप्त स्मृतियों को जाग्रत कर देगी; और जो अभी तक वहाँ नहीं गये, उन्हें यह युद्धान्त की प्रार्थना करने के लिए प्रेरित करेगी।

श्रीनगर
८ सितम्बर १९४१

कै. ना. हक्सर.

लेखक

अपनी ओर से—

सन् १९३७ को बीते चार वर्ष पूरे हो गए। वे सुनहरे दिन, यूरोप-दर्शन की उमंगें; उदधि की उत्ताल तरंगों पर, रजतराका में तारिकाओं की झिलमिल आँख-मिचौनी का दृश्य; आस्ट्रिया और स्विट्जरलैंड की हिम-मण्डित शुभ्रांचल-धारिणी सौधरमणी का सौन्दर्य, लावण्य-धन्य ललित लताओं और हरित निसर्ग वनराजी की सुषमा का अनिमिष-नयन दर्शन; और एक सौधोत्सङ्ग से दूसरे गिरिशृंग की सैर; नागिन-सी बल खाती हुई सड़कों पर कभीऊपर, कभी नीचे, कभी पर्वत के कटितट पर प्रकृति के जादू-भरे दृश्यों का—सौन्दर्य-सुधा का—पान; कभी नगरों की नव्य–भव्य अट्टालिकाओं का आतिथ्य, और कभी ग्राम के निकुञ्जों में—प्रकृति के लीला-निकेतन में—बने हुए लता-मण्डप और सुमन-सुरभि-भार से भरे हुए जनावास में प्रवास।

ये सारे दृश्य आज भी मेरे स्मृतिपट पर ज्यों के त्यों बने हुए हैं; परन्तु वे अब स्वप्न-सृष्टि जैसे मालूम देते हैं! उस समय का शांत और ऐश्वर्य–सुखोपभोग में तन्मय यूरोप भी इस समय कहाँ रहा! आज उस स्वर्गीय भूखण्ड का वर्णन करते समय स्मरण ही उन सुनहले दिनों का एक चित्र-सा सामने खड़ा कर देता है।

यूरोप से वापस होते ही मैंने आदरणीय बन्धुवर श्रीमान् आगरकरजी की आज्ञा से यात्रा के अनुभवों को 'स्वराज्य' में लिखना शुरू कर दिया था। यह वर्णन अब भी अधूरा है, केवल आस्ट्रिया से स्विट्जरलैंड तक का ही। 'स्वराज्य' के अतिरिक्त कुछ लेख 'सुधा' और 'सरस्वती' में भी निकले थे। इस पुस्तक में उन्हीं को सगृहीत कर चारपाँच नए लेखों के साथ पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ। अभी यात्रा का बहुत बड़ा अंश (लन्दन, फ्रांस, इटली, जर्मनी आदि का वर्णन) शेष है। न तो मैं प्रमादवश, कार्यभारवश, लिख ही पाया, न अबतक अवसर पा सका हूँ। अनेक प्रतिष्ठित पत्र-संपादकों और मित्रों ने इन संस्मरणों को पसन्द कर मेरे उत्साह को बढ़ाया है, इसी साहस-संबल को लेकर मैं इन्हें इस प्रकार प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ हूँ।

'बालक'-कार्यालय और 'पुस्तक-भंडार' से, पन्द्रह वर्ष से ऊपर समय हुआ, मेरा स्नेह-सम्बन्ध चला आ रहा है। और, इसका कारण 'हिन्दी के अमूल्य रत्न' सुहृद्वर शिवपूजनजी हैं। उनके छपरा चले जाने पर 'बालक'—

कार्यालय के 'सहृदय' कवि पं० इचरुदार त्रिपाठीजी से सहज परिचय हुआ, और बातों ही बातों में पुस्तक-सम्बन्धी चर्चा हुई। इन लेखों को यह रूप देने के लिए आरम्भ में उन्हीं के द्वारा 'बालक'-सम्पादक और 'पुस्तक-भण्डार' के स्वामी श्रीरामलोचनशरणजी ने सहृदयतापूर्वक इसका भार स्वीकार कर लिया, और फिर इसका सारा भार सज्जन-मूर्त्ति शिवपूजनजी पर छोड़कर मैं सर्वथा निश्चिन्त हो गया, यहाँ तक कि प्रूफ से लेकर सारा श्रम ही उन्हीं का है।

पुस्तक में कुछ भ्रमजनक भूलें भी रह गई हैं। परन्तु उसकी सजावट में शायद वे अखरनेवाली नहीं होंगी। पुस्तक का जो कुछ रूप है, उसमें जो कुछ उत्तमता है, उसका श्रेय बन्धुवर शिवपूजनजी को है, और सुन्दर बनाने का प्रकाशक महाशय को है।

इस जगह मैं उन विहार के कलामूर्त्ति महारथीजी को धन्यवाद देना नहीं भूल सकता, जिन्होंने अपने आतरिक स्नेह से इसे अलङ्कृत किया है। यदि पुस्तक रोचक न हुई, तो यह अपराध मेरा है। किन्तु एक साधारण 'सुन्दरी' को दो-दो कलाकारों ने बहुमूल्य अलङ्कारों से, वस्त्राभरणों से, सुसज्जित करने का यत्न किया है।

सबसे बढ़कर इस छोटी-सी रचना के परम सौभाग्य का विषय यह है कि भारतीय देशी राज्यों की राजनीति के अन्तरराष्ट्रीय विश्रुत विद्वान्, विद्या-वयोवृद्ध, सहृदयता की प्रतिमूर्त्ति और मेरे आदरास्पद, श्रीमान् कर्नल सर कैलास नारायणजी हक्सर साहब महोदय, सी० आइ० ई०, ने कृपापूर्वक भूमिका लिखकर मुझे बहुत अनुगृहीत किया है, और पुस्तक की प्रतिष्ठा को बढ़ाया है। कर्नल साहब की मुझपर असीम और अकृत्रिम कृपा है। मुझे अपने प्रति उनके वात्सल्यपूर्ण हार्दिक स्नेह-भाव का गर्व है। किन शब्दों में उनका मैं अनुग्रह मानूँ, समझ नहीं सकता।

इस प्रकार अति दीर्घ काल के पश्चात् यह छोटी-सी संस्मरणात्मक रचना आपके समक्ष उपस्थित है। यदि समस्त पाठकों ने, सुधी समाज ने, इसे पसंद किया तो शेष यात्रा-वर्णन भी मैं उपस्थित करने का आगे कभी साहस करूँगा।

एक बार पुनः नतमस्तक हो आभार मानकर विराम लेता हूँ।

भारती-भवन, बड़े गणेश
उज्जैन (मालवा)

विनयावनत
सूर्यनारायण व्यास

अभिप्राय

आदरणीय पं० सूर्य्यनारायणजी व्यास ने इस पुस्तक को लिख कर सची सेवा हिन्दी-संसार की की है। यों तो पंडितजी सुप्रसिद्ध हिन्दी-लेखकों में हैं; किन्तु हिन्दी में इस विषय पर पढ़ने योग्य बहुत कम पुस्तकें अब तक लिखी गई हैं।

'सागर-प्रवास' जैसा सुन्दर नाम है वैसी ही सुन्दर यह पुस्तक भी है। और, जैसी इसकी भाषा मधुरता से भरी हुई है, वैसे ही यह सुन्दर चित्रों से भी परिपूर्ण है। अलावा इसके, जिस प्रकार सागर में अनेक लहरें देखने में आती हैं, उसी प्रकार यह पुस्तक भी विचाररूपी तरंगों का समुद्र है। आश्चर्य यह होता है कि लेखक महोदय ने तीन-चार मास की यात्रा में इतना देख डाला—और केवल देखने का ही नाम नहीं, किस बारीक दृष्टि से देखा जो पढ़ते समय पाठक के सामने ज्यों के त्यों दृश्य आ जाते हैं।

मैंने स्वयं 'लंदन में भारतीय विद्यार्थी' नामक पुस्तक—उपन्यास के रूप में—लिखी; लेकिन दूसरे उद्देश्य से। किन्तु पंडितजी ने तो इस पुस्तक को लिख कर थॉमस् कुक (Thomas Cook) के नये प्रवासियों को समझाने-बुझाने का काम सरल-सा कर डाला है। हर-एक भारतीय को, जो योरप-यात्रा करने का विचार करता हो, अवश्य इस पुस्तक को एक बार पढ़ना चाहिये।

मैं पंडितजी को हार्दिक बधाई देता हूँ कि उन्होंने हिन्दी-साहित्य की बड़े महत्त्व की सेवा की है।

अम्बिकापुर
सरगुजा-स्टेट
१०–७–१९४०.

महाराजकुमार मानसिंह
(बॉर-एट-लॉ)

यात्रा-विवरण

∴

स्वर्गीय पं० श्रीनारायण व्यास
(ग्रन्थकार के पूज्य पिता)

१

सागर—जहाज

रम्ये सागर-तीरे !
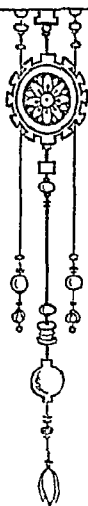
वर्षों से मन्सूबे बाँधा करता था कि क्या मैं भी कभी विशाल समुद्र की यात्रा कर सकूँगा। जहाँ-कहीं प्रवास-वर्णन देखता, सब काम छोड़कर अवश्य एक बार उसे पढ़ लेता। बाबू शिवप्रसादजी की 'पृथ्वी-प्रदक्षिणा' और बैरिष्टर चन्द्रशेखर सेन की यात्रा तथा स्वामी सत्यदेवजी की यात्राओं के वर्णन पढ़कर मेरी उत्सुकता बलवती होती जा रही थी। अपनी स्थिति और अनेक कठिनाइयों को देखकर कभी हताश होता, फिर किसी यात्रा का वर्णन पढ़कर उमंग ही उठती। अंतरात्मा में यह भासित होता था कि नहीं—एक बार अवश्य मुझे भी इस यात्रा का सौभाग्य प्राप्त होगा।

एक बार जब सम्राट् पंचम जार्ज जीवित थे, उनकी सिल्वर-जुबिली मनाई जा रही थी। मेरी यात्रा का प्रसंग आ गया था। कपड़े भी बन गए, जहाज के लिए भी लिखा पढ़ी 'तार' से मेरे एक आदरणीय मित्र ने कर दी। परंतु भावी कुछ विचित्र ही सूचना दे रही थी। तय्यारी करता जा रहा था, पर अंदर ही अंदर दिल कट रहा था कि यह यात्रा होना अशक्य है !!

मैं इस रहस्य को स्पष्ट रूप में समझ नहीं सका था कि आखिर यह निर्बलता क्यों आ रही है। कभी-कभी ऐसा होता है कि हमारी अथवा हमारे संपर्क में आए हुए मित्रों-परिचितों की भली-बुरी घटना की कल्पना पहले ही धुँधली-सी छाया की तरह आ जाती है, परंतु हमारी प्रवृत्ति उस ओर उतनी सूक्ष्मता से निरीक्षण नहीं करती, इस कारण स्पष्टता नहीं होने पाती। इस बार भी मैं किसी दुर्घटना की आशंका करने लग गया था, वह १५ रोज बाद ही घटित हो गई !
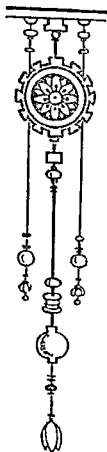
एक रोज भले-चंगे पूज्य पिताजी रात को सोये। सुबह उठकर वे मंदिर में जाने के लिए स्वयं छात्रों के साथ चले आ रहे थे। द्वार पर पहुँचे होंगे कि उनके हृदय की गति अकस्मात् रुक गई। बस, जहाँ से कोई वापस नहीं आता, वहाँ चल दिए! मुझ पर पहाड़ टूटकर गिर गया!

यही भावी मुझे आगे नहीं बढ़ने दे रही थी। इस तरह एक बार आया हुआ सागर-यात्रा-प्रसंग निकल गया। परंतु मेरी यात्रा की उत्सुकता शांत नहीं हुई। हृदय गवाही देता था कि फिर जाऊँगा। मैं कभी निराश नहीं हुआ था।

आज ठीक १॥ वर्ष के अनन्तर पुनः यह प्रसंग आ गया। मैं और 'स्वराज्य'-संपादक—आदरणीय आगरकरजी, दोनों अपनी 'कार' से इन्दौर जा रहे थे। रास्ते में न जाने कैसे चर्चा चल पड़ी। श्री आगरकरजी का कहना था—'आपको अब एक बार यूरोप जाना चाहिए।' मेरे हृदय की वे प्रसुप्त या तन्द्रित भावनाएँ पुनः जागृत हो गईं। इन्दौर पहुँचकर ही मैंने अपना निश्चय सुना दिया कि अब मैं जुलाई तक अवश्य चला जाऊँगा।

दो रोज बाद घर वापस आया; 'पासपोर्ट' लेने की कार्यवाही शुरू कर दी। २५ मई (१९३७) को पासपोर्ट के लिए लिखा था। मेरा विचार 'जून' में ही यात्रा करने का था, परंतु अभी एक मास हो गया था, पासपोर्ट की कार्यवाही पूरी ही नहीं हुई। बहुत ढिलाई हो रही थी, इधर मेरी भावनाएँ बहुत वेगवती बन रही थीं। यह देरी मुझे बार-बार खटकती जा रही थी। 'जून' भी व्यतीत हुआ, जुलाई २४ के जहाज से जाने का दुबारा निश्चय किया। परतु अभी तक पासपोर्ट की खानापूरी होती जा रही थी। इस हालत ने मुझे बहुत व्यथित किया। अंततः पासपोर्ट के बिना ही २३–७–३७ को मैं घर से ५ बजे की गाड़ी से निकलने का निश्चय कर बैठा। सारी तैयारी बम्बई से कर लेने का विचार था।

उस रोज भोजन के प्रथम मैंने पूज्य माताजी के सामने अपनी यात्रा-विधि का निश्चय बतलाया था, ओह! मैं उस स्मृति

को नहीं भुला सकता। आज उदधि की गगनस्पर्शी तरंगों पर भी स्मृति का चित्र देख रहा हूँ। मेरी प्रेममयी माता की आँखें सजल हो आईं, वे उसी रोज से खिन्न रहने लगीं। मैं भी तो हँसता-बोलना, सब कुछ था, पर मेरा हृदय जान रहा था कि क्या बीत रही है! बड़ी कठिनाई से घर पर वे दिन मैंने बिताये हैं। मेरी क्या हालत थी, यह अगर शब्दों में सब कुछ कहने की सामर्थ्य होती तो अवश्य लिखकर बतलाता! उस रात को, जिसके बीतने पर मुझे घर छोड़ देना था, न जाने क्या-क्या सोचता रहा, करवटें बदलता रहा। निद्रा की निरंतर अनुनय की, पर वह ऐसी रूठी कि पास आने का नाम न ले रही थी, जैसे वह भी मुझसे अर्से के लिए बिछुड़ रही हो!

ज्यों-त्यों रात बीती, सुबह होते ही लोगों के आने-जाने का ताँता लग गया, उनका प्रेम उमड़ रहा था, और मेरी हृदय-दशा......? बार-बार आज हृदय पूरा बाँध तोड़ कर तूफानी बनना चाहता था, क्षण-क्षण पर मैं मुश्किल से सम्हाल रहा था; मित्र-स्नेही और आप्तजनों के प्रेमोपहारों, पुष्पमालाओं से मैं दबा-सा जा रहा था। आज पेट तो यों ही भर गया, खाने से नहीं—न जाने कैसे! सामान पहले से ही तैयार था; आज का दिन कितनी जल्दी में बीता? घड़ी भी झट-पट एक-एक घण्टा आगे बढ़ाती जा रही थी।

देखते-देखते ४ और ४॥ बजे, अब तो चलना ही था। कब तक मोह करता? पूज्य माता के निकट जिस समय आज्ञा पाने के लिए पहुँचा, उस समय मेरे पैर के नीचे जमीन नहीं थी, मैं बहुत हल्का-सा अनुभव कर रहा था, हवा के झोंके से मैं उड़ जाऊँ; रह-रहकर पैरों को जमीन पर जोर से दबा रहा था। हृदय का तूफान अब रुका न रहा; वह राह ही देख रहा था। जबान पर ताले पड़ गये। न जाने क्या-क्या कहने को सोचकर सामने गया था; पर यह किसे मालूम था कि शब्दों की गति ही सीमित है। यहाँ आँखें अपना काम पहले ही करने लग गईं। उधर मातृ-नयन भी सजल बन गए थे। निरुपाय! बस, इसी
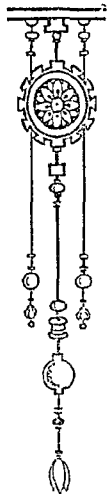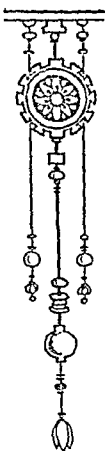
हृदय को निर्झरिणी के पुनीत जल से मातृ-चरणों को धोता हुआ हृदय को कड़ा करके आगे बढ़ा। परंतु अभी तक जो सुकुमार कलियाँ, कोमल-कुसुम-से बच्चे हँसी-खेल में मस्त थे, उनका नन्हा-सा चेहरा भी मुर्झा रहा था। 'ओस' के कणों की तरह उनके गालों पर अश्रु-बिन्दु ढुलक रहे थे। यह दशा मेरी आँखें देखने में असमर्थ थीं। मेरे प्यार के केंद्र 'बच्चे' आज मुझसे बिछुड़ रहे थे। वे मेरी ओर इस देखकर मुँह फिरा लेते थे। मेरा हृदय लाख कड़ा करने पर भी धैर्य-च्युत हो जाता था। इधर मित्र-स्नेही और आदरणीय जन फिर प्रेम-भरी बिदा देने की प्रतीक्षा में थे।

मैं अपनी कमजोरी को मुश्किल से छुपा कर आगे बढ़ा, पर वह छुपाये नहीं छुपती थी। 'हृदय' की परीक्षा में कुशल सहृदय प्रोफेसर रमाशंकरजी शुक्ल ने स्टेशन पर मेरी मनोदशा को पहचान लिया, समझाने लगे। इधर पांडेजी महाराज खुद गद्गद हुए जा रहे थे, मेरी बुद्धि काम नहीं करती थी। आत्म विस्मृत हो, चित्र लिखित-सा सब देखता रहा, प्रेमोर्मिमालाओं से लदकर शब्द भी अंदर दबे जा रहे थे। गाड़ी ने सीटी बजा दी—पांडेजी को अब भी संतोष न हुआ था, वे हृदय खोलकर रख रहे थे। गाड़ी को भी उन्होंने अपने प्रेमपूर्ण आग्रह के साथ दो मिनट और ठहरा ही लिया, पर यह कब तक ··?

मैं अपने ड्रायवर 'सूरज' को साथ लिये आगे बढ़ा। इधर रेल भागी जा रही थी, उधर मेरे विचारों की गति भी रेल की 'स्पीड' से कम नहीं थी। न जाने क्या-क्या सोचता जा रहा था। बार-बार हृदय भर जाता था। आज वह उत्साह, वह उमंग—सब न जाने कहाँ गायब हो गये थे। रेल में अपनेको अकेला पाकर जी ने चाहा, हृदय को हल्का कर लूँ, लेकिन इससे क्या मेरे चिरस्नेही जन, जिनमें मैं घिरा रहता था, मिल जाते? वे तो अपने प्रेम की छाप मुझ पर और भी जोर से लगा गये, ताकि वियोग-व्यथा से मैं छटपटाता रास्ता बिताऊँ।

धीरे-धीरे फतेहाबाद आया। यहाँ एक और साथी मिल

गए। 'एक से दो भले' की कहावत के अनुसार कुछ बातों में जी लगा। रतलाम से दूसरी गाड़ी में बैठा। रात को १॥ बजा होगा, फ्रण्टियर-मेल गोधरा से आगे बढ़ चुकी थी। सेकण्ड-क्लास में मेरे सामने की सीट पर एक अंग्रेज मिलिट्री-इञ्जिनियर सो रहा था। नींद मुझे भी थोड़ी आ गई थी। एकदम जोर का धड़ाका हुआ; लाइट खोलकर देखता क्या हूँ कि डब्बे की एक खिड़की चूर-चूर हुई है, काँच के टुकड़े मेरी सीट पर भी पड़े हैं। पर सोये हुए साहब पर तो सारा काँच ही पड़ा था। उसे तो नाक पर चोट भी लगी। घबरा कर वह उठा, सारा डब्बा काँच से भरा था। पता नहीं, इतनी रात में किस दुष्ट ने यह हमला किया था! ईश्वर ने प्राण बचाये, नहीं तो काँच से वह डब्बा रक्तमय बनता! हमें तो जरा भी पता नहीं लगा।

इसी उधेड़बुन में बड़ौदा आया। यहाँ फिर दो सज्जन तैयार ही थे। उन्होंने आग्रहपूर्वक हमें उतार ही लिया। इनका प्रेम भी अपूर्व था। एक दिन के लिए रास्ते में यह एक घर और बना। रात को जब इनसे भी बिछोह हुआ तो हृदय पर एक और आघात लगा। अपनों से मिलकर बिछुड़ना तो अब बड़ा कष्टकर प्रतीत हो रहा था। फिर दोनों ओर से आँखें बरस पड़ीं। बिछोह की वर्षा-ऋतु में यह बदलियाँ तो छाई हुई थीं ही, वे फिर एक बार बरस गईं!!!

दूसरी रात फिर चला। प्रातःकाल बम्बई आ पहुँचा। ८-१० वर्षों के बाद आज फिर बम्बई में आया हूँ। बम्बई में वही चकाचौंध है। वैभव और विलास की स्वर्गपुरी बम्बई, क्षण भर के लिए तो प्रभाव डाल ही देती है, पर मुझे तो गन्तव्य पथ का ध्यान रहता था। मेरे लिए न जाने क्यों नीरस-सी बन रही थी बम्बई! समुद्र की तरंगों की तरह एक-के-बाद-दूसरी मोटर भागती चली आती दिखाई देती। इनमें कई पर तिरंगे राष्ट्रीय झण्डों को वायु-वेग में फहराता देखकर दिल उछल पड़ता था। अब तो यहाँ राष्ट्रीय राज्य हो गया है। तथापि 'नरीमान' और 'पटेल' को लेकर पत्रों में काफी लिखा-पढ़ी हो रही है। नरीमान
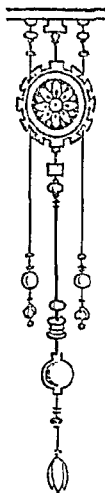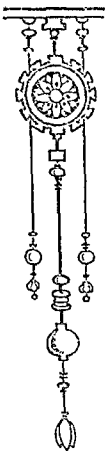
के साथ अन्याय हुआ है, यही सब का कहना है। मंत्रियों में नरीमान का न होना, खटकना तो जरूर है। बम्बई के लिए राष्ट्रीय क्षेत्र में जितना नरीमान का नाम है, उतना औरों का नहीं। परन्तु सरदार पटेल और जमनालाल बजाज के मन की गति-विधि को पहचानना साधारण मानस-शास्त्री का काम नहीं है। ये गांधी-युग के 'रहस्य' हैं।

हाँ, यहाँ आकर फिर वही पासपोर्ट का प्रश्न उपस्थित हुआ। घर से तो चल ही पड़ा था, पर पासपोर्ट अभी तक हाथ नहीं आया, इसका पछतावा बढ़ता जा रहा था। अब राज्य के पोलिटिकल मेंबर को तार दिया—"मैं ३१ जुलाई को जाना चाहता हूँ। पासपोर्ट भेजिए। समय पर अगर आप भेज न सकें तो बम्बई-पुलिस-कमिश्नर को सूचित करिये कि मुझे पासपोर्ट देने में आपको कोई आपत्ति नहीं है।"

मुझे मेंबर साहब का अनुग्रह मानना चाहिए कि उन्होंने तुरंत उत्तर दिया, और पुलिस कमिश्नर-बम्बई को भी। मैं गवर्मेण्ट-सेक्रेटरियट में गया। फार्म लेकर पुलिस कमिश्नर के आफिस में पहुँचा। एक अंग्रेज महाशय बैठे हुए थे। मालूम हुआ कि वे डिपुटी-सुपरिंटेंडेंट पुलिस थे। मैंने जाते ही अपना तार दिखलाया, तुरत उन्होंने टेबल पर रखा हुआ एक 'तार' दिखलाया कि 'हमारे पास भी आ गया है।' तब तो जान-में-जान आई। उन्होंने अपने सामने मेरे हस्ताक्षर लिये, और तुरंत कमिश्नर साहब के दफ्तर में जा दस्तखत ले आये! इस काम में मुश्किल से ५-७ मिनट लगे होंगे।

अब हमने फिर 'कार' ली, और सेक्रेटरियट में पहुँचे। दफ्तर बन्द हो गया था, अत. घर आए। दूसरे रोज सुबह फिर ११॥ बजे पहुँचे। ५ मिनट में उन्होंने फार्म लेकर 'कल' आने को कहा। आज हमारा काम लगभग हो गया था। अभी तक जो चिंता थी, वह नहीं-सी रह गई थी।

अब दूसरा काम था, 'थामस कुक' से। आगे बढ़े। ३१ जुलाई को जानेवाले जहाज की सीट का तय करना था। कम्पनी
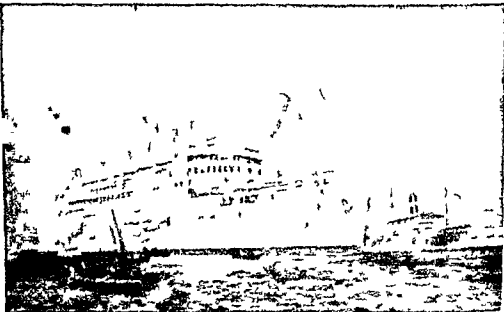
P & O कम्पनी का विशालकाय (१२५०० टन का) स्ट्रेथनेवर —
जहाज जिसमें एल ने प्रवास किया। (पृ० ७)

के द्वारा ५५२ के केबिन में हमें क्रमशः अपने मित्र के साथ एक ही जगह दो सीटें मिल गईं। यह चिंता भी कम हुई।

दूसरे रोज सुबह सेक्रेटेरियट में फिर पहुँचे। ऊपर जाते ही नाम पूछा गया। नाम बतलाने के साथ पासपोर्ट-कॉपी हमारे हाथ में रख दी गई। २-३ मिनट में यह काम खत्म हो गया। यहाँ 'रियासत' और 'ब्रिटिश इण्डिया' का अंतर समझ में आया। जिस पासपोर्ट के लिए दो मास से ऊपर प्रयत्न करते हो गया था, मुश्किल से यहाँ कुछ घण्टे लगे होंगे, वह हस्तगत हो गया—न झंझट, न खानापूरी की दिक्कत ही। अब तो जहाज में बैठना ही बाकी रह गया था।

वह ३१ जुलाई भी आ गई। खाना-पीना फिर आज कुछ न हुआ, मानों पेट भरा हुआ ही था। ज्यों-त्यों करके १०॥ बजे, हमने अपना रंग बदला। साहबी ठाट बना लिया, सिर्फ सर पर अपनी टोपी रहने दी थी। पौने सोलह आने साहबी ठाट करके बेलार्ड-पीयर (जहाज-स्टेशन) के लिए रवाना हुए। सामान कुलियों के सपुर्द कर ईश्वर का नाम ले जहाज 'स्ट्रेथनवर' पर पैर रखा। पी० एण्ड० ओ० कम्पनी का यह २२५५० टन का बड़ा जबरदस्त जहाज है। इसमें लगभग दो हजार यात्री सफर करने वाले हैं। जहाज पर यात्रियों का और उनके पहुँचाने वालों का ताँता-सा लगा हुआ था। कोई विदा दे रहा था। कुछ से बोलते नहीं बनता था। हार-फूल से किसी की मित्रमण्डली कुशल-कामना कर रही थी। कुछ माताएँ अपने इकलौते लालों के सिर पर हाथ फेरकर सजल-नयन विदाई दे रही थीं, कुछ बच्चे तो इस तरह फूट-फूट कर रो रहे थे कि कठोर हृदय भी पिघल जाता था।

कुछ समय तो मैं यह सब देखता रहा, पर मेरा जी भी अंदर-ही-अंदर पिघलता जा रहा था। मित्रों की कई बातों का केवल 'हूँ'-'हाँ' कहकर उत्तर देता था। भय था कि कहीं ये मेरी कमजोरी जान न लें। धीरे-धीरे जहाज के अंदर पहुँचाने आये हुए लोगों को बाहर जाने की घण्टी हुई। यहाँ और मुश्किल का सामना था, लोगों को घण्टी बार-बार निकालना चाहती थी और
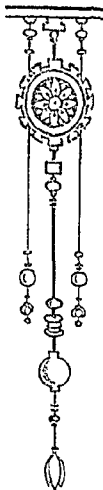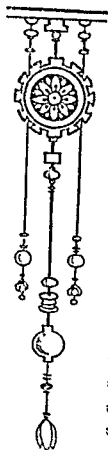
उनका मोह अपनों को छोड़ने को राजी नहीं हो रहा था। जेल-खाने में मिलने जानेवालों को जिस निर्दयता के साथ समय होते ही निकाल कर बाहर कर,देते हैं, ठीक वही दशा यहाँ मिलने-वालों की हो रही थी। विवश हो जहाज छोड़ वे नीचे खड़े हो गये। अब नीचे खड़े होकर जहाज छूटने तक आँखों से गंगा-यमुना की धारा निरंतर प्रवाहित करने लगे। यह मेरे लिए बड़ा कारुणिक दृश्य था।

लो, यह एक बजा; जहाज का लंगर भी छूट गया, साथ ही मेरे हृदय का बाँध भी टूट गया! आँखों के सामने अँधेरा-सा छा गया। एकबारगी सारा घर, मातृभूमि, मोह-माया आँखों के सामने आ गई, मातृभूमि से वियोग होने की कल्पना मात्र थी, वह आज प्रत्यक्ष ही हो रही थी। हृदय समझाने पर भी विकल हो गया था। हजारों रूमालों के साथ लोगों के दिल हिल रहे थे। ज्यों-ज्यों तट छूट रहा था, दोनों ओर से रूमाल और दिल हिल रहे थे। जहाज किनारा छोड़ तैरने लगा। जबतक वह आँखों से ओझल नहीं हुआ, बराबर रूमाल हिलते रहे। पहुँचाने वाले निराश होकर लौटे होंगे, और यात्रीगण एक-एक कर अपने-अपने केबिन में म्लान-वदन आने लगे।

अब ऊपर अभ्राच्छादित आकाश, और नीचे अगाध जल-राशि है। मेरी विचित्र दशा थी। अनेक विचार उठ रहे थे। माता और मातृभूमि का वियोग हृदय को बुरी तरह व्यथित कर रहा था। पर क्या करता ? मुँह गिराए चुपचाप अपने केबिन में उतर आया। बिस्तर में पड गया। न जाने कब तक ऐसा ही पड़ा रहा। जब ध्यान आया तो देखता हूँ, घड़ी ने ४।। बजाए हैं। चाय की घण्टी हो गई है। चाय केबिन ही में मँगवा ली, और रसम अदा करने की तरह कुछ घूँट ले वैसे ही छोड़ दी। फिर सो गया। खाने-पीने या किसी बात में जी नहीं लगता था। विचार-तरंगें उठ रही थीं, न जाने कब विचारों में ही पड़ा-पड़ा निद्रित हो गया।

१

सागर—जहाज

प्रातःकाल निद्रा भङ्ग हुई। मैं लाइट गुल करके सोया था। देखता हूँ, मेरा केबिन प्रकाशमय है। जरा दृष्टि ऊपर उठाई तो टेबिल पर चाय और फल भी रखे हुए मिले, मालूम हुआ कि यह 'बेड-टी' (बिस्तर की चाय!) है। हमारे 'केबिन' के 'स्टिवर्ड' ने ही यह प्रकाश कर चाय समर्पित की है—मुखमार्जन कर चाय की आराधना की। अब कहीं आगे के कार्यक्रम पर ध्यान गया।

शौचालय में जाकर देखा, यहाँ जल की जगह कागज का उपयोग होता है! मुझे तो यह जँचा नहीं। फिर वैसा ही लौट आया। एक शीशी की व्यवस्था की, और उसमें जल लेकर पहुँचा। जिन्हें कागज का अभ्यास नहीं है, वे भारतीय भी प्रायः यहाँ कागज लेकर साहब बनना पसंद करते हैं, पर मेरा खयाल है, इससे मन का समाधान नहीं होता।

अब बाथ-रूम में गया, गर्मी से सारा शरीर चप-चप कर रहा था। गर्म जल से स्नान किया। पता न होने के कारण इसमें भी मुझसे एक गलती हो गई। टब में गर्म और ठण्डा जल रखा था, और एक डिब्बा अलग से भी गर्म जल का ऊपर रखा था। मैंने समझा, गर्म जल की कमीबेशी के लिए यह व्यवस्था होगी, उसी टब में मैंने सारा एक कर दिया। अब मैं नहाने के लिए उसमें उतरा तो सारा शरीर खराब हो गया। तब समझ में आया कि यह खारा जल था, इससे पहले नहाकर फिर स्वच्छ जल डालने के लिए ही यह डिब्बा रखा था। आज पहला ही दिन था, इसलिए सारी परीक्षा होने को थी। फिर बॉथमैन को आर्डर देकर निर्मल सलिल से स्नान किया।

तब तक 'ब्रेक-फास्ट' की घण्टी हुई। यह ८ बजे होती है।
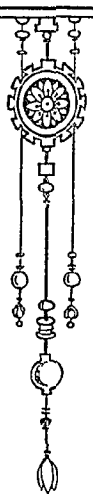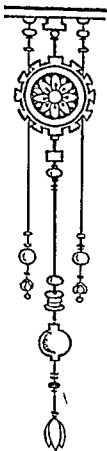
धीरे-धीरे केबिन में से लोग सेलून में पहुँचने लगे, मैं भी गया। वहाँ मक्खन, रोटी और चाय ग्रहण की। ऊपर चढ़ते हुए देखता जा रहा था कि आज अनेक यात्री सामुद्री बीमारी के शिकार बने हुए अपने-अपने कमरे में कै कर रहे हैं। थोड़ी-थोड़ी देर में 'हो-हो' की आवाज इधर-उधर से आती थी। समुद्र भी थोडा तूफान पर था, इसलिए यह बीमारी नवीन प्रवासियों को ज्यादा सता रही थी। इससे बचने के दो मार्ग हो सकते हैं, एक तो सोये रहना, और दूसरे ऊपर 'डेक' पर जाकर कुर्सी के सहारे बैठ जाना। सोते हुए व्यक्तियों पर कम असर होता है, और डेक पर थोड़ी हलचल भी कम मालूम होती है, तथा शुद्ध वायु भी मिलती है। मैंने पुस्तकों में, प्रवास-वर्णनों में, पढ रखा था, इसलिए मैं इससे बचा रहा।

मैं डेक पर आकर बैठ गया, शुद्ध वायु पाते ही चित्त प्रफुल्ल हो गया। अब चारों ओर जलमय संसार था, दृष्टिपथ की सीमा तक अगाध जलराशि के ही दर्शन होते थे, अशांत सागर की उत्ताल तरंगें एक अजीब सगीत सुना रही थीं, मानों इस पर इतना बडा यह 'पोत' एक बच्चे के लिए खिलौना-जैसा वक्ष स्थल पर खेल रहा है। सहस्रों लहरें एक-दूसरी से होड लगाए चली आ रही थीं। अगली लहर से उसके पीछे आनेवाली लहर मिलती है, तब तक १०-२० लहरें और आकर एक पहाड खड़ा कर देती हैं। जब तक ये पर्वताकार तरंगें ऊपर उठना चाहती हैं, तब तक इसी प्रकार दूसरी ओर से आनेवाली लहरों की इन पर्वतोन्नत लहरों से टक्कर हो जाती है। तब एक ओर का फव्वारा छूटकर लहरें विलीन हो जाती हैं—और फिर वही क्रम !! इस समय लक्षावधि जल-कण ऊपर उठकर वायु-वेग के साथ 'डेक' के यात्रियों को शीतल-स्पर्श कराते हैं। लहरें एक-दूसरी से ईर्षा करती हुई आगे बढती चली आती हैं। उनके स्वैर-विहार में जहाज की बाधा जब आ जाती है, तब वे इस समुद्र-नगर (जहाज) से टकरा कर खेल खतम कर भाग जाती हैं। फिर वही भाग-दौड जारी हो जाती है।

जहाज का उपहार-(भोजन)-गृह (पृ० १०)
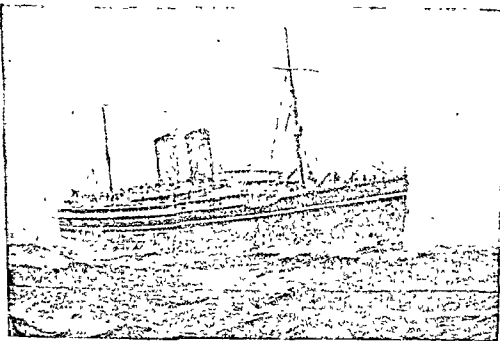
तूफानी —तरंगों पर जल-यान (पृ० १०)
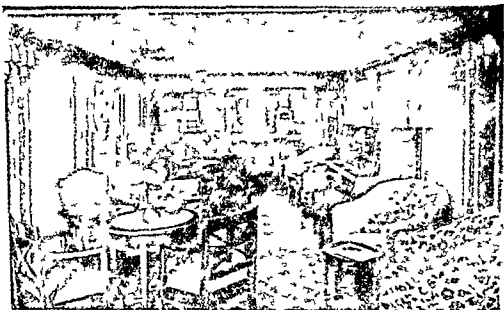
जहाज में प्रथम श्रेणी के यात्रियों के लिए लेखन-वाचन स्थल। (पृ० १६)

इस वीचि-विहार से इतने बड़े जहाज में भी क्षण-क्षण उथल-पुथल मच जाती है। कभी यह भी लहरों के साथ उछलता है, फिर नीचे आता है और लहरें इससे लगकर, अपना नाच-गाना भूल कर, विलीन हो वापस लौट जाती हैं। फिर भी वे अपनी मस्ती में इतनी मग्न हैं कि उनका संगीत बन्द नहीं होता। चाहे हम इनकी भाषा न समझें, परंतु ये अवश्य कोई मधुर स्वर-लहरी के साथ अश्रुत गान की कोई कड़ी जरूर गाती जाती हैं, उमड़ी चली जा रही हैं। ये गगन-स्पर्शी तरंग-रमणियाँ अवश्य कोई स्वर्गीय संदेश लिये न जाने किसे सुनाने चली जा रही हैं। एक-दूसरी से होड़ लगाती हैं कि कौन पहुँचकर पहले संदेश कहे। इनका यह सतत गमनागमन निरर्थक नहीं है। जहाज के पास आकर जब ये अनेक में एकत्व का दृश्य दिखलाती हुई परस्पर गले मिलती हैं, जिस समय इनकी हर्षाश्रु-वर्षा होती है, उस समय गर्म समीर भी स्पर्श से शांति का अनुभव करता हुआ, जहाज के यात्रियों को उस सुख का स्पर्श कराता है, मानों इन यात्रियों को भी वह अपनी खुशी का हाल सुना जाता है, और यात्री ? चाहे जानें, या न जानें, मैंने तो अपनी विचार-धाराओं को इन लहरों के साथ जुड़ाकर संगीतमय मधुर संदेश सुना है।

अपने देश से दूर जानेवाले ओ प्रवासी ! भारत के तट से तेरी जननी का संदेश लिये, ये लोल-लहरें, निरंतर कुछ कहती चली जा रही हैं। तू भी कुछ कह दे। वह प्रिय संदेश फिर से ले जाकर वहीं पहुँचायेंगी; किंतु ये मलिन-मन न होंगी। निर्मलता तो इनके अंतस्तल तक में है, ये बतलाती हैं कि हम अनेक होकर भी एक हैं। लाखों के स्वरूप में अलग-अलग दिखाई देते हुए भी हम अंततः एकाकार हैं, अनन्त हैं।

घण्टों मुग्ध हो मैं, सब कुछ भूला हुआ-सा, गगन-चुम्बित उत्ताल तरंगों के इस स्वर्गीय दृश्य को देखता रहता हूँ। अपने मन की 'नौका' को इन तरंगों पर छोड़कर वारिधि के विशाल वक्षःस्थल पर लहराता रहता हूँ। कालिदास ने मेघ को संदेश-

वाहक बनाकर संदेश भिजवाया था। मैं समुद्र-नगर में बैठकर लोल लहरों से अपना संदेश कहता और सुनता रहता हूँ। इस अलौकिक आनन्द में विभोर हो आत्मविस्मृत-सा तब तक कल्पना-जगत् की सैर करता हुआ बैठा रहता हूँ, जब तक मित्र 'डिनर' की (भोजन की) घण्टी होने की सूचना न दे।
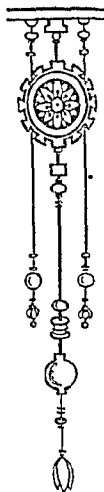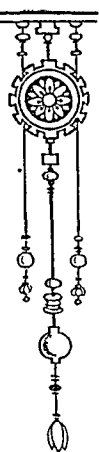
पेट की क्षुधा अब जागृत हुई। अभी तक भूख-प्यास सब गायब हो गई थी। मित्र के साथ उठा, और खाने गया। यहाँ मुझे छुरी-काँटे की खनखनाहट सुनाई दी। अभी तक स्वर्गीय संगीत सुन रहा था, अब मैं उस संसार में पुन: आया जहाँ खाने-पीने (पेट) के लिए काट-पीट हो रही है !! आसपास सर्वत्र अभक्ष्य-भक्षियों का घेरा था, मैं और केवल एक-दो साथी इस समूह में शाकाहारी थे। आज पहला दिन था, इसलिए हमें कठिनाई का सामना करना पड़ा। आलू उबले हुए, टमाटो, मक्खन-रोटी पर ही गुजर किया।

पेट की ज्वाला शांत नहीं हुई। पर मेरा पेट तो उस अमर संगीत से भर रहा था। फिर उठा, और उसी शोभा को जी भर कर देखने डेक पर जा बैठा। आज बहुत-से भारतीय समुद्र की बीमारी से व्यथित थे, इसलिए खाने की जगह नहीं आए, अपने-अपने केबिन ही में पड़े रहे। हमारे साथी सज्जन अनुभवी थे, उन्होंने भोजन के लिए स्पेशल सूचनाएँ दीं, ताकि हमें शाकाहार में असुविधा का सामना न करना पड़े।

डेक पर अब खेल-कूद शुरू हो गये थे। अनेक स्त्री-पुरुष, भिन्न भिन्न देशों के रहनेवाले, अलग-अलग प्रकार के खेल-कूद में मस्त हो आनन्द मनाने लगे। पश्चिम की मर्दानी युवतियाँ, जाँघिया चढाए, पुरुषों के साथ खूब खेल रही थीं। लहरों की तरह आपस में इनका खेल-कूद भी एक आनन्द का विषय था। ये लोग कहीं भी रहें, एक घर के होकर, आनन्दोत्साह के साथ, खेल-कूद कर दिन बिता देते हैं। इनके जीवन का यही ध्येय है। अलग-अलग खेलों में सभी बूढ़े-जवान, स्त्रियाँ-लड़कियाँ और बच्चे व्यस्त थे। बीच-बीच में नारंगी-नीबू के पेय पीते जाते थे।

शाम हुई, भगवान् भुवन-भास्कर अस्त होने चले। सागर की निर्मल लहरों पर एक अजीब दृश्य बन रहा था। कहीं-कहीं से अभ्राच्छादित आकाश में रक्तिम किरणें दूर जल-तल पर चित्रकारी कर रही थीं, तो कहीं से लहर उछल-उछल कर रंग-बिरंगी धाराएँ बनाकर प्रकृति को अपूर्व चित्रकारी बना देती जाती थीं। अब रात का अँधेरा दूर से धुँधली चादर-तरंगों को ओढ़ता हुआ चला आ रहा था। तारों की शोभा इस रजनी की साड़ी पर अजीब थी। लोल लहरों पर मानों सितारे-जड़ी साड़ी हवा से उड़कर बार-बार चमक रही है। सागर ने रत्नमय अंबर परिधान किया था।

मालूम नहीं, कितनी रात तक मैं यह सब अतृप्त नयनों से जी भर कर देखता रहा, आज मुझे आठ बजे का 'लंच' नहीं लेना था। [समुद्री बीमारी से बचने के लिए आरंभ में कम खाया जाय, यह उपाय भी है।] इसलिए यह समय कब बीता, मेरे पास के लोग अपनी-अपनी सीटें छोड़ कब गए और आए, कुछ खयाल नहीं रहा। मेरे साथी ने कहा—"चलिए, ११ बज रहे हैं, सोना भी है कि नहीं ?" मैं एक बेसुध आदमी की तरह कल्पना-जगत् में विचरता हुआ, केबिन में गया और बिस्तर पर पड़ रहा। विचारों में बहते हुए मालूम नहीं कब निद्रा आ गई।

लगातार दो रोज से सागर में तूफान रहा, लहरें अपनी शक्ति भर उछल-उछल कर इस घोर गम्भीरगति विशालकाय जहाज को भी डगमगा देती थीं। ऐसी दशा में भला सागर-जन्तुओं के भी दर्शन क्यों होने लगे ? वे दबे हुए कहीं बैठे होंगे। आकाश भी अब साफ था। इधर वर्षा का नाम नहीं। पक्षियों का कलरव स्वप्न में भी अश्रुत था। जहाज का हमारा एक छोटा-सा संसार इस भवसागर में तैर रहा था। भँवरों से टकराकर भी यह अपनी धीर-मन्द गति से लहरों को चीरता हुआ बढ़ा जा रहा था। अब मुझे डिनर-टी-लंच में कोई कठिनाई नहीं होती थी। मैं लगभग २ वर्षों से मिर्चे नहीं खा रहा हूँ। इसलिए यह उबाले हुए आलू-टमाटो, पालक-नमक और आम की
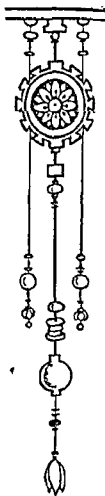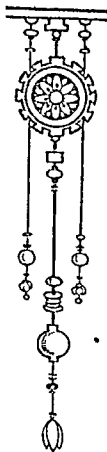
चटनी के साथ, बड़े स्वाद के साथ खा लेना। घर से थोड़ा मसा भी बना लाया हूँ। यह मिला लेने से बढ़िया स्वाद आ जा है। मेरे लिए चीफ-स्टीवर्ड (भोजनाध्यक्ष) को भी ख्याल गया है कि मैं कट्टर शाकाहारी हूँ, सो वह भी वैसी व्यवस्थ करके खास तौर पर प्रायः रोजाना आकर कह जाता कि आ आपके लिए यह बनाया है। मैं भी उसे धन्यवाद दे देता।

इस जहाज मे और भी कई भारतीय हैं। कहने को ब्राह्मण भी हैं, परंतु यूरोप जाने की तैयारी मे वे घर पर ही स कुछ खाने पीने की तैयारी कर आये थे, मानों यहाँ तो उन्हें अभक्ष्य खाना ही पड़ेगा। वे मजे मे मछली-मांस-अण्डे चट करते थे। जब वे स्वयं ही सब कुछ खाने को तैयार हैं तो इन जहाजवालों को क्या पड़ी है जो हिन्दुस्तानी खाना बनवावें? यदि भारतीय लोग सभी यह तय कर लें कि हम भारतीय ढग से बना हुआ पवित्र भोजन ही करेंगे, तो जहाजवालों को मजबूर हो व्यवस्था करनी पड़ेगी। वे अपनी कीर्ति और व्यापार के लिए सब करेंगे। अब भी वे करते ही हैं—यह मैं एडन के वर्णन मे बतलाऊँगा।)

हाँ, तो मेरे लिए रोजाना अपनी मर्जी का खाना मिल जाता था। इसकी मुझे घर से चलते समय बड़ी चिन्ता थी, पर यहाँ आकर वह न रही। अभी पिछले दो वर्ष से जब मैं बीमार रहा, जीवन-मरण की समस्या चल रही थी, तब मैं केवल भारतीय उपचार पर विश्वास रखते हुए विदेशी दवा से बचता रहा हूँ। मुझे स्वय जीवन में सदेह हुआ, सभी ने आग्रह किया, तब भी मैंने खाने-पीने की विदेशी दवा न लेकर मजबूरी से इञ्जेक्शन स्वीकार किये। ऐसी हालत मे मुझ-जैसे व्यक्ति का जहाज मे भोजन से समाधान हो जायगा, यह घर पर विश्वास नहीं हो सकता था।

चार दिन के बाद आज सागर मे भी तूफान कम हो रहा था। समुद्री बीमारी भी २–३ रोज के अनन्तर शात हो चली थी। वे लोग, जो अब तक डर से बाहर नहीं निकले थे, आज

(३०-७-३७) अपना-अपना घोंसला छोड़े बाहर आ रहे थे। नई-नई सूरतें दिखाई दीं। अनेक भारतीय इस जहाज में यात्रा कर रहे हैं। आपस में मिलने-जुलने भी लगे। एक पंजाबी सज्जन और पूना के एक मुसलमान युवक, जो इञ्जीनियरी की शिक्षा लेने जा रहे हैं, मेरे पास 'सुपारी' खाने आकर बातें कर लिया करते हैं। ये दोनों ही बड़े मिलनसार हैं। अब रात को डान्स और सिनेमा भी होने लगा। रात को १२-१ सहज ही बज जाते हैं, पर मैं तो १०-११ बजे से ज्यादा नहीं जागता। नाच देखने को भी नहीं बैठा, चलते-फिरते देखकर अपने केबिन में दाखिल हो जाता हूँ और सो रहता हूँ। मेरे लिए तो सागर-तरंगों का नाच-गाना अधिक आकर्षक हो गया है। कल यह जहाज दोपहर तक एडन पहुँचेगा।

३

एडन
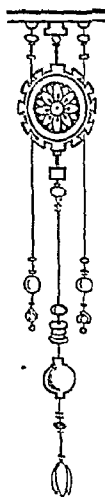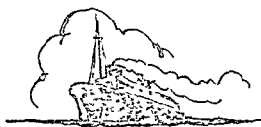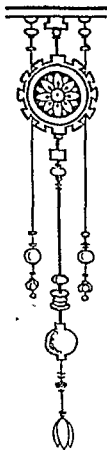
'एडन' आज आएगा। मानव और मेदिनी के दर्शन की लालसा से जहाज का छोटा-सा संसार आज बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा-पथ में पलक-पाँवड़े बिछाए हुए था। सुबह होते ही जिधर देखो उधर टेबलों पर, डेक पर और अपनी कुर्सियों पर, स्त्री और पुरुष, कागज और कलम लिये हुए थे। उनके चेहरे पर हर क्षण नवीन भावों का उतार-चढ़ाव हो रहा था। लहरों की तरह उनकी भाव-भंगियाँ भी आज बहुत लोल एवं तरल बन रही थीं। सभी अपने प्रिय जनों को पत्र लिख कुशल-संदेश देने में तन्मय नजर आ रहे थे। मालूम नहीं, इन पाँच दिनों के विछोह ने कितना व्याकुल बना रखा था?

मैं स्वयं यह अनुभव कर रहा था कि आज बरसों बाद प्रियजनों को कुशल पत्र भिजवा रहा हूँ। मेरे हृदय में कितनी उत्सुकता थी—भावावेशों का तूफान था! शब्दों में प्रकट करने का सामर्थ्य कहाँ? आज यह 'एडन' हमारे पत्रों को लेकर घर पर संदेश पहुँचवाने का 'माध्यम' बनने को था। मातृभूमि को छोड़ने के बाद आज ही तो ममतामयी मेदिनी और मोहक मानव दिखाई देनेवाले थे। पत्रों के लिखते समय हृदय में बहुत बार ज्वार-भाटे आए। एक-एक शब्द हृदय की भाषा में यदि लिखे जाते तो एक चीज बन पड़ती। पर ये आँखें बार-बार शब्दों के बने हुए स्मृति-पटासीन चित्रों को धो-धोकर बहाए देती थीं। लिखने को बहुत जी चाहे, पर भावों पर एक बार वह लहरों का तूफान आ जाए कि सब उस प्रवाह में बह जाते थे। फिर नया। कहीं आज मानव के पंख लगे होते तो वह उड़-उड़कर आता, और अपनों से मिलकर तृषा शांत कर वापस जहाज में सवार हो जाता!

मुझे पत्र लिखते-लिखते शंका हुई कि मेरी आज अजीब

—बन्दरगाह का राजमार्ग

सागर-तट—(पोस्ट-ऑफिस का दृश्य)

दूसरा—स्टीमर पॉइंट— एडन' (

मनोदशा है। क्या ये और लोग मुझे देख तो नहीं रहे हैं ? यदि देखा तो क्या समझेंगे ? क्या कहेंगे ? अपनी 'सुध' में आकर दूसरों की तरफ ध्यान दौड़ाया, तो कुछ प्रौढ पुरुष और स्त्रियाँ, आँखों से जलधारा बहाते हुए, पत्र लिख रहे थे। कई के युगल नयन सजल थे। अपनी बहक पर मुझे तसल्ली हुई। अपने संगी-साथी और भी हैं, यह जानकर संतोष की साँस ली, और फिर मैं पत्र पूरा करने लगा। एक-दो-तीन पत्र, मालूम नहीं कब से लिखने बैठा था, और जब पूरे किए तो 'लंच' के 'भोंपू' बजने में कुल १० मिनट बाकी थे। उठा और कैबिन में जाकर भोजन की तैयारी की। मेरे साथी भी तैयार हो रहे थे। उनकी 'माला-जपाई' पूरी हो रही थी। भोंपू के बजते ही पालतू-कबूतरों की तरह उड़-उड़कर खाने की जगह सब जुड़ गए। खाना जारी था।

अब हमारी निगाह समुद्र की लहरों को देखने खिड़कियों से झाँकने के लिए बढ़ी। अरे यह क्या ? आस-पास छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, दूर-दूर पर धुँधली-सी, समुद्र की सीमा बाँध रही थीं। भू-भाग के दर्शनों की प्यासी आँखें खाने की सुध भूली-सी क्षण-भर पर्वत-श्रेणी को देखती रहीं। अभी १॥ बजा था, पर कुछ मीलों की दूरी पर कोई नगर आने को है, यह आश्वासन दिलाने इन पहाडियों की शृंखला सामने आ रही थी। लोग खाना खा रहे थे, पर चर्चा का विषय प्राय. यही था। कुछ लोग तो कुर्सियों से उठ-उठ कर खिड़कियों के पास जाते और 'सीन' देखकर लौट आते। इस दृश्य को देखकर जहाज के वे वेटर्स (रसोई परसनेवाले), जिनका निरंतर निवास ही जहाज में रहता है, मुसकरा रहे थे। एक उपेक्षा की हँसी, अज्ञता की हँसी, हँस देते थे। वे रोज-रोज जहाज में रहकर इस उत्सुकता की महत्ता को क्या समझें ? उनके लिए तो यह आना-जाना स्वभाव ही हो गया है।

हाँ, तो यों ही आज दिन बीत रहा था। फिर खाना खत्म कर यात्रिगण लिखा-पढ़ी में तन्मय बने। ३ बजे, ४ बजे, और

मनोदशा है। क्या ये और लोग मुझे देख तो नहीं रहे हैं? यदि देखा तो क्या समझेंगे? क्या कहेंगे? अपनी 'सुध' में आकर दूसरों की तरफ ध्यान दौड़ाया, तो कुछ प्रौढ़ पुरुष और स्त्रियाँ, आँखों से जलधारा बहाते हुए, पत्र लिख रहे थे। कई के युगल नयन सजल थे। अपनी बहक पर मुझे तसल्ली हुई। अपने संगी-साथी और भी हैं, यह जानकर संतोष की साँस ली, और फिर मैं पत्र पूरा करने लगा। एक-दो-तीन पत्र, मालूम नहीं कब से लिखने बैठा था, और जब पूरे किए तो 'लंच' के 'भोंपूँ' बजने में कुल १० मिनट बाकी थे। उठा और कैबिन में जाकर भोजन की तैयारी की। मेरे साथी भी तैयार हो रहे थे। उनकी 'माला-जपाई' पूरी हो रही थी। भोंपूँ के बजते ही पालतू-कबूतरों की तरह उड़-उड़कर खाने की जगह सब जुड़ गए। खाना जारी था।

अब हमारी निगाह समुद्र की लहरों को देखने खिड़कियों से झाँकने के लिए बढ़ीं। अरे यह क्या? आस-पास छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, दूर-दूर पर धुँधली-सी, समुद्र की सीमा बाँध रही थीं। भू-भाग के दर्शनों की प्यासी आँखें खाने की सुध भूली-सी क्षण-भर पर्वत-श्रेणी को देखती रहीं। अभी १॥ बजा था, पर कुछ मीलों की दूरी पर कोई नगर आने को है, यह आश्वासन दिलाने इन पहाड़ियों की शृंखला सामने आ रही थी। लोग खाना खा रहे थे, पर चर्चा का विषय प्रायः यही था। कुछ लोग तो कुर्सियों से उठ-उठ कर खिड़कियों के पास जाते और 'सीन' देखकर लौट आते। इस दृश्य को देखकर जहाज के वे वेटर्स (रसोई परसनेवाले), जिनका निरंतर निवास ही जहाज में रहता है, मुसकरा रहे थे। एक उपेक्षा की हँसी, अज्ञता की हँसी, हँस देते थे। वे रोज-रोज जहाज में रहकर इस उत्सुकता की महत्ता को क्या समझें? उनके लिए तो यह आना-जाना स्वभाव ही हो गया है।

हाँ, तो यों ही आज दिन बीत रहा था। फिर खाना खत्म कर यात्रिगण लिखा-पढ़ी में तन्मय बने। ३ बजे ४ --- और

यह सामने मीनारें, मकानात और पहाड़ी पर बसी हुई सुन्दर बस्ती अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी। जहाज की गति, निरंतर जल में रहने के कारण, उतनी स्पष्ट नहीं विदित होती। 'जल' जा रहा है या जहाज की अपनी कोई 'गति' है, यह उलझन बन जाती है। हालाँकि चलता जहाज भी है और जल-लहरें भी; पर कौन किससे होड़ लगाए हुए है, यह तब प्रकट होता है, जब एक दूसरी वस्तु सामने आवे।

अब नगर निकट आ रहा था, सो जहाज भी तरंगों से खेलते हुए तट से मिलने के लिए बेचैन बन रहा था। मानों वह भागा जा रहा हो। अब उसे ये गगनस्पर्शी तरंगें उतनी बाधा नहीं दे रही थीं। उसे विश्वास हो गया था कि अपनेको कोई पनाह देनेवाला सामने आ गया है। बढ़ा चला जा रहा था। ४॥ बजे, 'एडन' का तट सामने आया। जहाज को कुछ प्रदक्षिणा-क्रम से तट के निकट आना पड़ता है। रास्ते में जल के अंदर 'दीप-दण्ड' मार्ग की सूचना दे रहे थे कि इधर ही बीच में होकर 'पथ' है—आस-पास भटके कि खतरा हाजिर!

जहाज इन जल-दीप-दण्डों की दर्शित दिशा से 'तट' पर आ लगा। अपनी इस विजय पर उसने 'भोंपू' बजा एक यात्रा की कुशलता सूचित की। यात्रिगण, डेक पर बहुत पहले ही केमरा साधे, और आँखों पर 'दूरबीन' लगाए, खड़े थे। कई फिल्मों की रीलें घूम गईं, जहाज 'तट' से थोड़ी दूर पर रहा होगा कि एक 'पायलट'-बोट आया, उसमें गवर्मेण्ट-अधिकारी था। वह चलते जहाज में ऊपर चढ़ आया था। इसकी स्वीकृति बिना 'जहाज' किसी पोर्ट—बन्दरगाह—में प्रवेश नहीं कर पाता। सो वह पहले ही सवार था।

जहाज के तट तक आते ही अनेक नौकाएँ, स्टीम-बोट्स, चारों तरफ आ लगीं। कई भारतीय टोपियाँ, साफे और पगड़ियाँ दिखाई देने लगीं, मानों बम्बई छूटा ही न हो। अनेक 'बेपारी' नावों में सामान लादे आ गए थे। वे नीचे ही खड़े-खड़े नौका में से—'मिस्टर! बहुत सस्ता'—की आवाज देते जाते थे,

और एक-एक रकम उठा कर दिखलाते जाते थे। आस-पास और भी भारत जाते और दूसरे देश जाते हुए अनेक जहाज दिखाई दिए। हमारे जहाज के रुकते ही 'एडन'-वासियों का ताँता लग गया। कई वोहरे, गुजराती भाई, और कच्छी लोग एक दूसरे की शकल देखते घूमने लगे। इनकी धोती, सफेद टोपी और पगड़ियों को देखकर फिर भारत की स्मृति जागृत हो गई। पाँच दिन के बाद एक बार पुनः अपना देश याद आया। है भी यह अपना ही, यहाँ कितने ही भारतीय हैं। रोजगार बहुत से भारतीयों के ही हाथ में है।

'एडन' एक छोटा-सा, सुन्दर पहाड़ियों पर बसा हुआ, समुद्र-वेष्ठित नगर है। सुन्दर नई स्टाइल के सुसज्जित मकान, स्वच्छ सड़कें, तार, बिजली, फोन-कार, सभी हैं। एक छोटा-सा, किंतु महत्त्वपूर्ण, नगर है। आयात-निर्यात का ही व्यवसाय प्रायः यहाँ रहता है। यहाँ तक पान खाने को मिल जाते हैं। आस-पास छोटी-छोटी नौका पर अरब लोग सामान लाद कर जहाज के यात्रियों को खूब ठगते हैं। अंट-शंट इंग्लिश बोलकर वे अपना काम बना ले जाते हैं, पर दाम मनमाने लेते हैं। जहाज बिलकुल किनारे नहीं लगता, इसलिए दर्शक तीन शिलिंग देकर 'एडन' देखने जाते हैं। यहाँ लगभग ४॥-५ घण्टे जहाज विश्रांति लेता है। आज तो फर्स्ट और 'टूरिस्ट'-क्लास के अनेक भारतीयों के एक जगह दर्शन हुए।

गवालियर के आर्टिस्ट मिस्टर यावलकर भी इसी जहाज से जा रहे थे। ये उज्जैन-माधव-कालेज के विद्यार्थी रह चुके हैं, और मूर्त्ति तथा चित्र-कला का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने यूरोप जा रहे थे। अभी ही महाराजा साहब गवालियर ने उदार आश्रय देकर इस युवक कलाकार को प्रौढ़ बनने के लिए प्रेरित किया है। श्री यावलकर ने मुझे देखा था, उन्होंने मुझे तुरंत पहचान लिया। मुझे अपने एक गवालियरी युवक को—अपने घर के ही व्यक्ति को—पाकर बहुत आनन्द हुआ। मिस्टर यावलकर होन-हार और कुशल युवक हैं। वे जब नवीन ज्ञान उपलब्ध कर
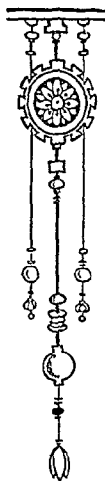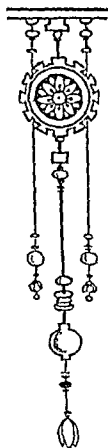
भारत आवेंगे, ग्वालियर में ही अपनी कला-शाला की कीर्ति को बढ़ायें, यही इच्छा है।

आज एक और दक्षिणी सज्जन से भेंट हुई। ये मि लेकर हैं। ये भी बड़े सुन्दर चित्रकार (आर्टिस्ट) हैं। बहुत स और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति हैं। इनमें स्वाभिमान और सच्चा क प्रेम है। इनकी 'तूलिका' सुन्दर दृश्यों को कागज पर उतारने विलंब नहीं करती थी। ये लंदन जाकर अपनी कला में लाने का यत्न करेंगे। ये ध्येय और धुन के पक्के, आदर्श-पूज व्यक्ति जान पड़े।

अनेक भारतीय यात्रियों में मिस्टर खान और श्री गोंधलेक खास ढंग के युवक दिखाई पड़े। अन्य यात्रियों का तो रंग-ढं विविधतापूर्ण मालूम हो रहा था। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहे थे, ए दूसरे के परिचय में आने का अवसर मिला। अजीब-अजीब ढं के प्रवासी समझ में आए। जहाज ही में कइयों की लीला देखक शर्म से सिर झुक जाता था। आज बहुत-से भारतीय प्रकट हुए। इस जहाज में २-३ सौ के लगभग 'भारतीय' यात्री थे। अनेकों 'एडन' देखने उतरे थे, और कई इस छोटे-से द्वीप जहाज ही में से देख लेना चाहते थे।

'एडन' की नगर-रचना पहाड़ी पर होने के कारण एक आकर्षण उत्पन्न करती है। यहाँ लगभग ५६५०० जनता क आवास है। इनमें यूरोपियन, अरब, सोमालीज, भारतीय, जेनूस और फारसी लोग हैं। इस पोर्ट पर गन् वगैरह ले जाई ज सकती है। भारत के सिक्के यहाँ तक काम दे सकते हैं, इंग्लिश-मनी प्रायः लोग यहीं से ले लेते हैं। शहर में यातायात के लिए टैक्सियाँ प्रति माइल आठ आने के हिसाब से चलती हैं। यहाँ नेशल बैंक और हाँग-काँग बैंक की शाखा, ईस्टर्न बैंक तथा पी० एण्ड० ओ० बैंकिंग कम्पनी की शाखाएँ हैं। यहाँ से जल तथा स्थल मार्ग भी हैं। जल-मार्ग से बेरबेरा, जिबूटी, ईस्ट अफ्रिका के स्थानों को जाया जाता है। यमन भी प्रायः यहीं से लोग जाते हैं। यहाँ एडन का एक म्यूजियम भी है, जहाँ पुरानी वस्तुएँ

संग्रहीत हैं। ...
का कारखा...
लायक घो...
मो...

२
नगर का मध्यभाग
जहाँ भारतीयों की
बस्ती है।

३
ऊँटगाड़ी

४
... के हवाई जहाजों
(ऊँटों) का दोपहरी
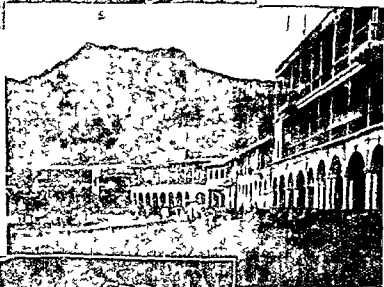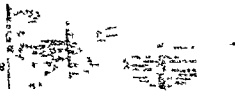
ग्रहीत हैं। छोटे-छोटे बाग-बगीचे भी सुन्दर बने हुए हैं। नमक का कारखाना, हॉटेल्स, नहाने की जगह, सरकारी दफ्तर देखने लायक बने हुए हैं। माल्लान्लीड से इस्तम्बूल तक रोड भी है। मोटर-बस के सफर से आस-पास की छोटी-छोटी जगहें दिखलाने का प्रबन्ध है, जो १० शिलिंग से प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त हो सकता है। यहाँ का 'गोल्ड मोहर', 'बार्यिंग क्लब' बहुत सुन्दर जगह मानी जाती है। यात्री लोग यहाँ प्रायः जाते रहते हैं।

धीरे-धीरे शाम हो गई। रात के आने की सूचना पाते ही नगर पर बिजली की बत्तियों ने शोभा फैलाना शुरू किया। रंग-बिरंगी बत्तियाँ पहाड़ी के चारों तरफ बहुत सुन्दर 'सीन' बना रही थीं। जल-तल पर नगर का प्रतिबिम्ब एक मोहक दृश्य बना रहा था। आखिर रात के ८ बजे जहाज ने पुनः अपना लंगर उठाया। देखते-देखते 'एडन' कुछ क्षणों में आँखों से ओझल हो गया। "फिर वही, सागर-तरंगों पर छिड़ गया मोहक तराना !"

'एडन' के छूटते ही सागर की उछल-कूद कम हो गई थी। अभी तक यात्रियों को तूफान के कारण जिस तरह परेशान होना पड़ता था, वह आज नहीं था; यह 'रेड-सी' (लाल-सागर) के नाम से प्रख्यात समुद्र है। एक गहरे तालाब की तरह सागर में अनोखी शांति थी। कल तक जिन तूफानी लहरों ने सागर-यात्रा की विभीषिका खड़ी कर रखी थी, आज वे 'समतल' बनी हुई एकाकार हो रही थीं।

परंतु आज दूसरी ही विपत्ति सामने आ गई थी। 'रेड-सी' में अरबस्तान की निकटता के कारण इतनी भयानक गर्मी पड़ने लग गई थी कि आज शरीर के कपड़े भी असह्य हो रहे थे, पसीने का झरना निरंतर प्रवाहित हो रहा था, खाना-पीना तक आज रुचिकर नहीं लग रहा था। पहले तूफान के कारण पेट की आँतों में उथल-पुथल मची रहती थी, तो यहाँ की गर्मी किसी भी बात में मन नहीं लगने देती थी। प्रायः सभी यात्री ड्रेस बदल रहे थे, खासकर अंग्रेज स्त्री-पुरुष जाँघिया और आधी बाँह का कुर्ता पहने नजर आ रहे थे। सभी को हवा
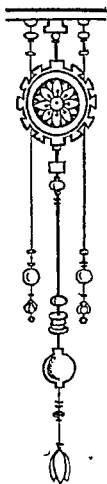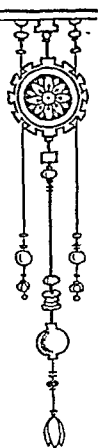
और छाँह की तलाश थी। इस डेक से उस डेक पर धूप से बचने के लिए अपनी-अपनी कुर्सी खींचते हुए यात्रिगण पसीने से तर घूम रहे थे। अनेक अंग्रेजों ने तो खाली जाँघिया पहन जहाज के स्नान-कुण्ड की शरण ले रखी थी, कई नहाकर आर्द्र-शरीर ही खेल-कूद में मग्न हो अपनी बेचैनी को भुलाने का यत्न कर रहे थे। यूरोपियन स्त्रियाँ भी स्नानकी जाँघिया पहने परेशान दिखाई पड़ती थीं, बार-बार वे भी नहाकर वैसे ही गीले शरीर खेल में जुट जाती थीं।

आज की गर्मी और तज्जन्य परेशानी देखते ही बनती थी। हमारे अनेक भारतीय तो विलायत जाने की शान में सूट डाटे हुए घूम रहे थे। सामुद्रिक शांति का लोगों पर उतना प्रभाव नहीं पड़ रहा था, जितना इस उष्णता की अशांति का प्रभाव था। रास्ते में कुछ-कुछ देरी से छोटी-छोटी पहाड़ियाँ निर्जन सूखी मरु-भूमि की छटा दिखा रही थीं। कभी-कभी एकाध जहाज भी आता हुआ, या जाता हुआ, दूर से दृष्टि पथ में आ रहा था। पर इधर लोग जरा ध्यान देकर आतप को भुलाना चाहते तो पसीने का झरना तुरंत उन्हें अपनी बेबसी का खयाल करा देता, और वायु-देव ऐसे रूठे हुए थे कि लोग तरस रहे थे उनके लिए अपने कैबिनों में जाकर। कृत्रिम वायु-वाहिनी रबर की गेंद की वायु से गले मिलते, पर वह 'तृपा' कैसे शांत हो ?

इधर क्षण-क्षण में शीतोदक के लिए कण्ठ व्याकुलता प्रदर्शित करता जा रहा था। कैबिन के दरवाजों पर जहाँ-तहाँ 'लाल' बत्ती लगी हुई दिखाई पड़ती थी, जिसका अर्थ 'वेटर' की 'आवश्यकता' थी ! वह जहाँ-तहाँ भागा घूमता, और उसके हाथ में बर्फ का ठंडा पानी ही दृष्टिगत होता था। प्यास बुझाए नहीं बुझती थी। 'लंच' के समय लोग खाना खाने आए तो सही, पर किसी को इस गर्मी में खाने की इच्छा न होती थी। थोड़ा-बहुत खाकर फिर वही पंखों की तलाश, छाँह की खोज ! रेड-सी की इस विशेषता से चार दिन हैरानी उठाना होगी, यह जानकर न जाने कितनों के प्राण बुरी तरह विकल हो रहे थे।

जहाज तो इस समय भी अपनी अबाध्य गति से मार्ग-क्रमण कर रहा था, और वे बेचारे खाना पकानेवाले तथा मशीनों में काम करनेवाले !! जहाज के अंतिम-जल-तल-गत भाग में काम करनेवाले मानवों की क्या दशा होगी ? परंतु ये तो अभ्यस्त हो गए हैं, इन्हें तो अपने 'पोजीशन' के अनुकूल ड्रेस लगाकर ही रहना पड़ता है, इनका तमाशा भी आज देखने को मिला।

अपनी-अपनी ड्यूटी खतम होते ही जहाज के छोटे-छोटे कर्मचारी डेक पर इधर-उधर चक्कर काटने लगते हैं। ये देखते हैं कि यात्रियों में अकेली युवतियाँ कौन-कौन कहाँ-कहाँ हैं ? ये धीरे-धीरे उनसे मित्रता गाँठते हैं, उनकी कुर्सियाँ इधर-उधर उठाये पीछे-पीछे घूमते हैं, उनके साथ मनोरंजन करके अपनी यात्रा का आनंद उठाने लगते हैं। ये अंग्रेज युवतियाँ भी बड़ी चंट होती हैं। इन लोगों से खूब अपनी गुलामी करवाती हैं, अजीब नाज-नखरे कर नचाती हैं। दोनों का समय यात्रा में मजे में कट जाता है, और लोगों का समय इस तमाशे के देखने में बहुत-सा बीत जाता है। १२ बजे छुट्टी हुई कि दस-पाँच की टोली इसी तलाश में निकलती है।

मैंने इस गुण्डा-टोली का नाम 'नत्थूभाई' रख छोड़ा था। ज्योंही ये ऊपर आए कि हमारे परिचित समाज में कहकहा लग जाता। एक दूसरे को लक्ष्य करके कहता, "सुना......! 'नत्थूभाई' आ गए हैं।" इस 'नत्थूभाई'-मण्डली में से भी एक-दो हमारे इस संकेत को समझ गए थे। वे झेंप की मुसकुराहट के साथ आगे बढ़ जाते, और अपने नियमित कार्य में जुट जाते। इधर इनकी गति-विधि देखकर हमारे भारतीय बन्धुओं में से भी एक सिन्धी महाशय * तथा एक मियाँ साहब भी कुछ-कुछ

* ये सिन्धी महाशय अजीब व्यक्ति थे। कहते थे कि किसी बिजनेस (Business) के लिए जा रहे हैं। पर एडन में इन्होंने अरब-व्यापारी के कपड़ों के भाव-ताव करते वक्त बड़ी बेहूदा हरकत की थी। उसने नीचे छोटी-सी नौका में बैठे-बैठे इतनी गालियाँ सुनाईं कि सब व्यक्ति इनसे परिचित हो गए थे। ये हमारे पास की टेबल पर ही खाना खाते थे। जितने प्रकार

यही काम सौंप रहे थे। ये भी वहीं इन्हीं-दुखी चञ्चलकुमारी के पीछे अपना प्रेमाञ्चल पसारे घूमा करते थे।

एक गुजराती महाशय तो कैमेरा लिए इन देवियों के पीछे पड़े रहते। वे यह राह देखते कि कौन-सा 'पोज' ये कब दे रही हैं। वे नहाने जातीं तो ये 'कैमेरा' साधे उनके विविध रूपों के चित्र लेने में तन्मय बन जाते। फिर 'प्रिंट' करवाकर उन्हें भेंट करते जाते, तथा दोस्ती का प्रयत्न करते। एक चित्रकार अपनी कला इन्हें ही बतला कर सार्थकता माननेवाले थे। जब देखो ये बस युवतिजनों में, बगल में चित्रों का खण्डल दबाए, घूम रहे हैं।

इधर एक जर्मन महिला, जो एक बड़ी लम्बी टोली की 'नायिका' मालूम होती थीं, पसीने में लथ-पथ, बहुत मस्त और अजीब भयावनी शक्ल से, १५–२० युवक-युवतियों के समूह के साथ 'बार-रूम' में कुर्सियों पर कब्जा किए जम जाती। सामने टेबल पर कुछ 'पेय' रखा हुआ रहता और उसीकी बगल में एक मनी-बेग जिसमें वह अपनी पूँजी लिये हुए इस दल को जुआ-बाजी के लिए उत्साहित (प्रेरित) करती,* और बाजी पर बाजी लगाए जाती थी। इस मण्डली का यही व्यवसाय था, और-और खेल-कूद में इन्हें इतना आनन्द नहीं। ये ताश के पत्तों पर हार-जीत का रंग जमाते चले जाते थे, और प्याली-पर-प्याली ढलती जाती थी।

आज की इस असह्य उष्णता ने मेरा भी चोला बदल दिया। मैंने साहसपूर्वक आज धोती धारण की। मैं अकेला ही सारे जहाज में आज धोती-धारी भारतीय था। मुझे पतलून में पसीने की निर्झरिणी सह्य नहीं हो रही थी। धोती से बहुत सुविधा हो गई। कई अंग्रेज मेरी इस वेश-भूषा पर विस्मय-मुद्रा से देखते

के मस-मटरगी का खाना दबना, यह सब चट करते थे। देखने में तो ये सूख थे, पर हम लोगों से ज्यादा खा लेते थे। इसलिए मैंने इनका नाम 'डिनर-न्दर' रख छोड़ा था। जहाज में इनका यह नाम खूब प्रचलित हो गया था। अनेक भारतीय इन्हें इसी नाम से पुकारते थे, पर ये भी मस्त नाव, हँसकर ही बोलते थे।

थे। मेरे एक साथी यह पसंद नहीं करते थे, वे मुझे पूरा अंग्रेज बना रहना देखना चाहते थे; पर मैं भारतीय रहना ज्यादा पसंद करता, उन्हें यह खटक जाता। मैं एक अपरिचित होने के कारण ही उनकी बात मान लेने को विवश होता, जो कई बार अनावश्यक भी ज्ञात होती थी। बम्बई के सर्वमान्य डॉक्टर मूलगाँवकर—जैसे व्यक्ति को अचकन—पाजामे और एक सादी टोपी में देखता तो मेरा हृदय बेचैन हो उठता था कि मेरी अज्ञता ही कारण है जो नाहक पैंट-कोट-टाइ का बन्धन स्वीकार करना पड़ा है! और अपनी वेश-भूषा को परिमित रूप में ला सका, वर्ना कोई बात नहीं कि हम अपने ड्रेस में न रह सकें। जब अंग्रेज स्त्री-पुरुषों को गर्मी की असह्य वेदना से पराभूत होकर अर्धनग्न रहते देखा, और उनकी सभ्यता पर कोई अंगुली न उठी, तो मुझे अपनी धोती-कुर्ते ने पुनः आकर्षित किया। साथी की अज्ञता पर परिताप भी हुआ। धोती पहनने से आज मुझे जो शारीरिक सुख-सुविधा मिली वह तो थी ही, पर एक बात और भी ऐसी हो गई जो सारी यात्रा का सुख बन गई। मैं ही क्या, मेरे और मित्र भी मेरी इस धोती की महत्ता के कायल हो गए!
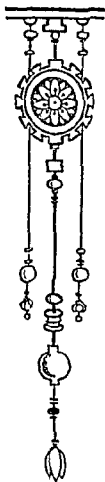
ज्यों-त्यों कर आज का दिन भी बीता। संध्या ने अपना तिमिरावरण सामुद्रिक सतह पर बिछाना शुरू किया। जहाज एक निर्लिप्त की तरह अपनी धीर-गम्भीर गति से चला ही जा रहा था। रात हुई, बड़ी कठिनाई से आज रात का शुभागमन हुआ। हवा यद्यपि रुकी हुई थी, पर रवि-किरण-माला की तीक्ष्णता नहीं थी, चन्द्र की शांत किरणें नयनानन्द दे रही थीं। प्रशांत स्तब्ध महासागर के वक्षस्थल पर चन्द्र न जाने कितने विभागों में विभक्त हो क्रीड़ा-कल्लोल कर रहा था। यात्रिगण इस मोहक दृश्य को देखते हुए आत्मतोष कर रहे थे। 'डिनर' से छुटकारा पा अनेक जोड़े डान्स के लिए हाल में धीरे-धीरे जमा होने लगे और मोहमयी मदिरा की मादकता में तन्मय हो 'सागर-नगर'-रंगशाला में नाच का रंग जमा। मस्ती उतरते ही शिथिल हो
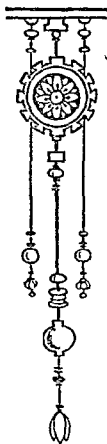
अपने-अपने कैबिनों में लोगों ने जाकर बसेरा किया। रात के १ बजे 'जहाज' एक छोटे-से 'पोर्ट' पर जाकर ठहरा। ४ घण्टे की विश्रांति ली, पर कौन जाने उस सुख-निद्रा में इस 'पोर्ट' की क्या स्थिति रही होगी ! कब लंगर उठाया, और कब रात बीती, यह पता नहीं चला ! प्रातःकाल जब 'कप-बशी' की खन-खनाहट कान पर पहुँची तो एक क्षण यह भ्रम हुआ कि डान्स तो नहीं हो रहा है, पर 'वेटर' ने आकर 'गुड-मार्निङ्ग-सर', 'टी सर' कहा तो पलँग से उठ बैठा, और प्रातःकालीन 'चाय' की मधुर आराधना की !

४
पोर्ट-सुडान
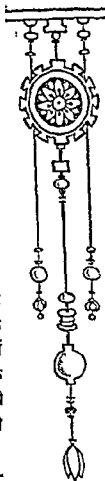
सारी रात और दिन के बारह बजे तक चलने के बाद आज इजिप्ट के एक छोटे-से बन्दर 'सुडान' पर जहाज आ पहुँचा। इस बन्दरगाह की स्थापना १९०७ में हुई है। यहाँ के सिक्के को 'पियास्ता' कहते हैं। १० हजार मानवों की यह निवास-भूमि है, जो मुस्लमी-सूडानीस कहे जाते हैं। ये सभी 'अरब' लोग हैं। इनकी सूरत-शक्ल निहायत भद्दी होती है। काले-कलूटे रंग की शक्ल पर अजीब घुँघरवाले बाल, और सफेद दंत-पंक्ति भयावह-सी मालूम होती है। इनका पहनावा सफेद गाउन पैरों तक लम्बा होता है। सिर पर या तो तुर्की टोपी या फिर एक रंगीन साफा भद्दा-सा। बस यही इनकी ड्रेस है। पुलिस भी इसी तरह की थी। वे खाकी वर्दी में जरूर थे। सिर पर तो उनके भी टर्किश-कैप थी।

यह बंदर यद्यपि इजिप्ट के राज्य में है, तथापि इस पर अधिकार ब्रिटिश का ही है। ईस्ट और वेस्ट में दो स्टेशन बने हुए हैं। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर हरियाली के भी दर्शन हो जाते हैं। यह स्थान अरब-माउण्ट पर, समुद्र-सतह से ५१५२ फीट की ऊँचाई पर, है। आसपास बहुत दूर तक छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं, जिन पर कहीं-कहीं आबादी भी है। पर लोग यहाँ के दरिद्र, असभ्य और पहाड़ी ही मालूम पड़ते हैं। पास ही इवेक्स, कुदू, लेपरड, आस्ट्रिया, बॅबून और गॅजेल आदि स्थान हैं।

'सुडान' में, इतनी छोटी जगह होते हुए भी, 'पोर्ट' होने के कारण टैक्सियाँ, बसें चलती हैं और ऊँट की सवारी तो इस रेतीले प्रदेश की खास वस्तु है। नैशनल बैंक ऑफ इजिप्ट, मर्कैले बैंक आदि बैंक भी हैं। हास्पिटल, स्कूल, हॉटेल और पार्क
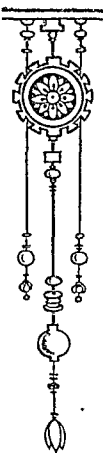
भी बने हुए हैं। स्टेशन पर गोडौन भी बड़े-बड़े बने हुए हैं। यहाँ का कोयला बाहर जाता है।

'सुडान' के जहाजी स्टेशन से लगा हुआ रेलवे-स्टेशन भी है। भारतवर्ष की छोटी-छोटी स्टेट-रेलवे की तरह यहाँ से एक छोटी गाड़ी चलती है। सुकेन, अटबारा, कास्साला, खारटूम तक गाड़ी से यातायत होता है। यहाँ से कैरो, खारटूम होकर, जाते हैं। स्टीमर द्वारा जाने का मार्ग भी है। पी. ऐंड ओ. और आस्ट्रेलियन स्टीमर्स इस लाइन में काम करते हैं। सुडान से स्थल-मार्ग द्वारा 'सुकेन' ४० मील दूरी पर है। मोटर द्वारा ३ घण्टे का रास्ता है। पोर्ट 'सुडान' के होटल-मैनेजर द्वारा इसकी व्यवस्था तुरंत की जाती है। परन्तु यहाँ उतरनेवाले यात्री बहुत कम होते हैं। हमारा जहाज सिर्फ एक घण्टा ही यहाँ ठहरा। एक भारतीय सज्जन, जो ईसाई दिखाई देते थे, अपने ४ बच्चों और बीबी के साथ यहाँ उतरे, और तुरंत जानेवाली ट्रेन में वे सवार हो गए। पता नहीं, वे कहाँ गए। पीछे इतना ही मालूम हो सका था कि वे डाक्टर हैं; वर्षों से इधर ही व्यवसाय करते हैं।

अभी लाल-सागर ही है। परंतु रंग बिलकुल ब्लू-ब्लेक स्याही की तरह है। सागर को लहरें आज बहुत नीली-नीली मालूम होती हैं। सूर्य की किरणों में यह नीलिमा बहुत सुहावनी दीखती है। १ बजे 'सुडान' को जहाज ने छोड़ दिया, और आगे बढ़ा।

'लंच' का समय हो गया था। हम लोग जहाज के चलते ही भोजन के लिए पहुँचे। जहाज धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। रास्ते में पहाड़ियों का सिलसिला अब भी जारी था। मैं तो आज 'रेड-सी' की भीषण ऊष्मा के कारण धोती ही धारण किए हुए था। भोजन से आज तृप्ति नहीं हुई। आज के उबले हुए आलू न जाने क्यों स्वादिष्ट नहीं बने थे। ज्यों-त्यों कर पेट की ज्वाला शांत करनी पड़ी। थोड़े फल खा लिये, शाक का स्वाद लिया और उन्मन हो उठ खड़ा हुआ। इस उदासीनता के साथ ही

भोजन-गृह के खाने से सम्बन्ध-विच्छेद होने को था, यह किसे पता था ?

बाहर निकला तो एक अनजान व्यक्ति ने सामने आकर नमस्कार किया, मैंने भी उत्तर दिया। वह पूछने लगे—

"आप कहाँ जा रहे हैं ?"

मैंने कहा—"अभी तो 'मार्सेल्स' ही जा रहा हूँ। आगे शायद 'स्विट्जरलेंड' जाऊँ।"

"कहाँ रहते हैं ?" आदि एक-दो प्रश्न और भी किए, और एक ही साँस में वे कह गए कि "क्षमा करना, ऐसे प्रश्न करना सभ्यता मे दाखिल नहीं हैं, पर आपने धोती पहनी है, इसलिए मुझे आपके स्वाभिमानी होने का खयाल आया और आदर उत्पन्न हुआ। चाहा कि आपसे परिचय प्राप्त करूँ, और आप यदि नाराज होंगे तो क्षमा भी माँग लूँगा।"

मेरी जान-में-जान आई, और नाज हुआ अपनी धोती पर। इसकी बदौलत मैं परिचय का कारण तो बन सका।

वे फिर सहसा पूछने लगे—"आपकी धोती और कपडे खादी के हैं, तो यहाँ आपको मन-माफिक खाना तो नहीं मिलता होगा ?"

मैंने कहा—"समय काटना है। अपने ढग का जो थोडा खाना मिल जाय, उससे ही समाधान मान लेता हूँ। अवश्य ही पेट की लपट तो शात होती है, पर अग्नि शमन नहीं होता।"

इन भलेमानस ने मेरे साथ सहानुभूति दिखाते हुए कहा—"पडितजी ! मैं ७-८ बार यूरोप गया हूँ। मुझे इसका पूर्ण अनुभव है, पर अब आप निश्चित रहिए। खाने की चिन्ता आप न करें। आज ही रात से मैं आपको भारतीय भोजन भेजने लगूँगा। ठीक समय पर आ जाइएगा, आप उधर का भोजन न लीजिए।"

मैंने अपने भाग्य को सराहा, और समझा कि आज मुझे भोजन से जो उपेक्षा हुई थी उसी का यह परिणाम है, और श्रेय है इस खादी की धोती को !
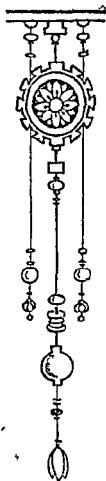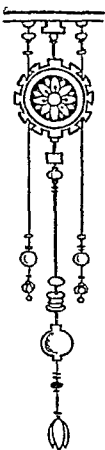
मैंने उन महाशय से "रोजाना कष्ट करने की क्या जरूरत है, मैं आपको क्यों कष्ट दूँ ?" आदि शिष्टाचार-सूचक शब्दों में आभार-प्रदर्शन किया, पर वे निश्चय कर चुके थे। कहने लगे—"आप कुछ न कहें। आप जहाज मे मेरे रहते हुए कष्ट पाएँ, यह नहीं होगा।"

मैंने इनसे विदा ली। मेरे मन में बहुत हर्ष हो रहा था कि यहाँ भी ईश्वर ने मेरे लिए योजना की। दृढ प्रतिज्ञा की सहायता अवश्य होती ही है। ये मारवाड़ के एक छन्नातीय ब्राह्मण थे। इनका नाम श्री छगनलाल था, और ये एक सम्पन्न परिवार के साथ व्यवस्थापक के रूप मे 'विएना' जा रहे थे। तुरंत ही नीचे जाकर अपने साथी को मैंने यह शुभ संवाद सुनाया। वे भी मेरे भाग्य से स्पर्धा करने लगे।

जहाज चला जा रहा था। दोनों ओर पहाड़ियाँ बहुत दूर-दूर समुद्र की सतह पर धुँधली रेखा-सी दिखाई दे रही थीं। गरमी परेशान कर रही थी। शनै-शनै रवि-किरणों का प्रकाश मन्द पडने लगा। दिनकर, दोपहरी की गरमी से तप्त हो, अपनी आतप शान्ति के लिए, लहरों से मिलना और समुद्र-तल को छूना चाहता था। इधर शीतांशुमाली विजय रथ पर चढ गगन-मध्य मे बढा आ रहा था। सागर-यात्रियों के क्लात वदन भी कुमुदिनीनाथ के दर्शन से विकसित हो रहे थे। धीरे-धीरे तिमिराचल ओढे रजनी-रानी भी आई। यात्रिगण सुध-बुध भूले दिन के आतप को विस्मृत कर मनोरंजन में लीन हो गए। और, रग-विरगी वेश भूषा से यूरोपीय रमणियाँ जहाज के आकर्षण का विषय बन रही थीं।

आरती की घण्टी हुई।*

हम भोजन की रिजर्व-सीट पर क्रमश जा बैठे। हमारी दृष्टि भोजनालय के द्वार पर ही लगी हुई थी। मैं छगनलाल की प्रतीक्षा मे था।

* मै भोजन के घण्टे बजने को मित्र-मण्डली में कहा करता था कि चलो आरती हुई, प्रसाद लेने मंदिर में चलो।

आज दो शाकाहारी भारतीय और भी हमारे साथ परिचित हुए। एक मिस्टर आर. के. अय्यर थे, जो सभी भारतीयों में कम 'वय' के थे और मद्रास से 'पी. एस.' की पढ़ाई के लिए जा रहे थे। यह युवक जहाज के खाने से अपरिचित था, और शाकाहारी होने के कारण असुविधा उठाता था। आज तो हमें इन सब शाकाहारियों के मुकाबले में अभिमान हो रहा था कि देखो—अभी हमारा स्वतन्त्र भोजन आता है। हमसे मिलकर रहो तो तुम्हारी भी कुछ सुविधा हो सकेगी।

ऐसे ही विचार मे तन्मय थे कि सामने ५-४ 'डिशेज' आईं। उनमें पूरी, भुजिया, दाल, शाक और एक मिठाई भी थी। मेरा दिल बाँसों उछल पड़ा। घर की एक बार सुध आई। अपना भोजन एक अर्से के बाद सामने आया देखकर मन में हर्ष भी हो रहा था। मैं और मेरे साथी खुशी-खुशी पूरियाँ अपने-अपने सामने रख रहे थे। सामने बैठे हुए मिस्टर अय्यर की हसरत-भरी निगाह भी देखी। मैंने सोचा, यह बेचारा युवक भी अपना हिस्सेदार है। उसकी डिश मे भी दो पूरियाँ और शाक रखते हुए मैंने कहा—"मिस्टर अय्यर! तुम्हारे काम की ही वस्तु है!" वह बहुत ही कृतज्ञ हो मुस्कुराया। आज उसे भी आनन्द हो रहा था।

भोजन से निवृत्त हो मिस्टर छगन भाई को हमने धन्यवाद दिया।

रात को आज जहाज मे घुड़दौड़ होनेवाली थी। पाठक यह न समझें कि जहाज मे कोई जानदार घोड़े दौड़ेंगे, परन्तु घोड़े दौड़ते जरूर हैं। हाँ, ये लकड़ी के होते हैं। इन पर रंग और नम्बर से टिकिटें लगती हैं, और आदमी इन्हें—पाँसे, किसीके हाथ डलवाकर—दौड़ाते हैं। जो नम्बर ज्यादा आता है वह घोड़ा आगे बढ़ता जाता है और उसकी टिकिट जिसके पास होती है, वह जीत जाता है, या जिन-जिनके पास होती हैं, उन्हें वह रकम तकसीम कर दी जाती है। इसी तरह जहाज में एक जूआ और भी होता है। 'जहाज आज कितना चलेगा'
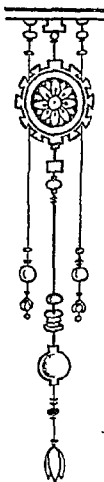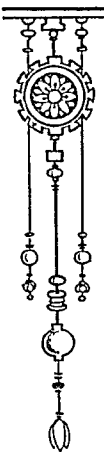
इस पर जो लोग अंदाजा लगाकर पैसे लगाते हैं, उन्हें भी पैसे मिल जाते हैं। ऐसे कई मनोरंजन के साधन जहाज में जुटाए जाते हैं। स्त्रियों के खेल, मर्दों के खेल। जहाज इन खेलों की व्यवस्था करके स्पर्धा करवाता है और इनाम, सार्टिफिकेट भी दे देता है। समय व्यतीत करने के ऐसे कई आयोजन होते रहते हैं। आज 'रेस' हुई। बहुत लोगों ने इसमें 'पार्ट' लिया और कई जीते भी। हारे बहुत! इस छोटे-से खिलवाड़ की हार में भी अनेकों की मुहर्रमी सूरत देखते ही बनती थी।

रात बीती। फिर दिन हुआ। रात भर आज भी पहाड़ियाँ मिलती रहीं। मार्ग में कभी दूरी पर, कभी निकट में लाइट-हाउस (दीप-दण्ड) मिलते रहे। समुद्री मार्ग के दर्शन कराते हुए ये कोसों दूर चले जाते। फिर लहरें इन्हें छुपा देतीं। आज रात में रास्ते में दो-तीन जहाज 'पोर्ट सईद' से वापस आते हुए मिले। एक-दूसरे से ये लाइट द्वारा संदेश आदान-प्रदान कर बिना रुके बढते चले जाते थे।

आज (७-८-३७) रात को ५ बजे 'स्वेज नहर' (स्वेज-कनाल) आ जाएगी। जहाज को विशाल सागर का मार्ग भूल कर एक तंग दायरे से गुजरना पड़ेगा।
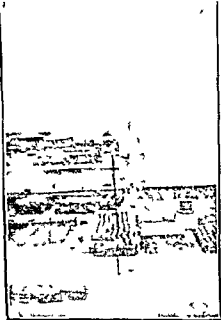
सूडान-नगर गोडाउन पृ० २७ से ३२ तक)

सूडानी, रेलवे और अरब जनता (पृ० २७ से ३२ त
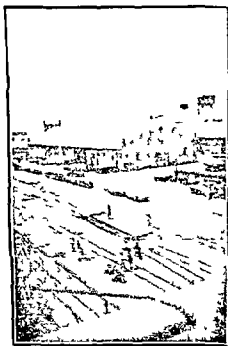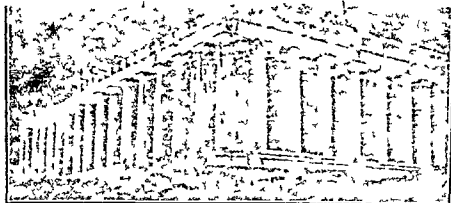
सूडान स्टेशन (पृ० २७ से ३२)

९
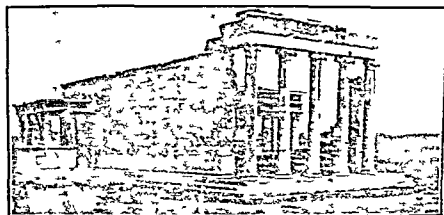
स्वेज-कनाल में

अभी तक जो 'जहाज' उन्मुक्त गगन के बीच, विशाल महासागर में, क्षितिज के छोर को छूनेवाली लहरों की क्रीड़ा में संमिलित होता हुआ, निर्भीक वीर की तरह अजस्र गति से, चला जा रहा था, वह आज रात्रि के अंधकार में, सुषुप्ति की गफ़लत में, अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा। गुलामी के तंग दायरे में से, कानूनी बंधनों से बँधे हुए संकुचित पथ से, वह गुजरने लगा। अरुणोदय के प्रथम ही यह घटना घटित हो गई।

प्रातःकाल उठकर यात्रियों ने कैबिन की वायुवाहिनी से झाँक कर देखा,तो चारों ओर रजत-वालुकामय संसार था। डेक पर आए बिना स्वेज-नहर की झाँकी नहीं हो पाती थी। जल-तल से आज मटमैले 'भ्रमर' उठकर उस 'नहर' की छोटी-सी गंदी नाली की रेत को ऊपर उठा रहे थे। 'जहाज' को कहीं अगाध जल के वक्षस्थल को चीरकर बाहर आने का अभिमान न हो जाय, इसलिए वह छोटी-सी नहर बतला रही थी कि उन्माद के कारण ही यह मैली रेत फाँकनी पड़ेगी!

दोनों तरफ रेत के पहाड़ बड़ी दूर-दूर तक दिखाई दे रहे थे। हवा के झोंकों से उड़-उड़ कर रेत नहर में भी आ जाती है, इसलिए तट से ऊपर के भागों में प्रायः घाँस की चीपटें गाड़ दी गई थीं। हवा से रेत उड़-उड़ कर इन चीपटों से टकरा वहीं इकट्ठी हो जाती है। कीमचियों के स्पर्श से रेत के ढेर पर विचित्र लहरें बन जाती हैं। वह भी एक प्रेक्षणीय दृश्य बन जाता है। राह में सड़क भी बाँई ओर चली जा रही है, जिसके आसपास वृक्षों की कतारें लगी हैं। कहीं मोटर और मोटर-साइकिल के दर्शन भी हो जाते हैं।
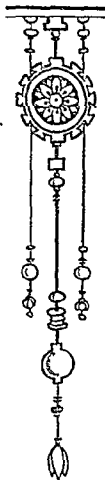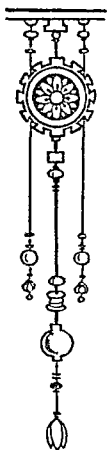
यहाँ कौवे, मक्खी, मच्छर भी बहुत दिनों बाद मिल गए, और सबसे बढ़कर तो उन महाप्राण, त्यागवीर, श्रीमान् १०८ श्री गधादास के भी सहसा दर्शन हो गए !! यह प्रदेश तो अब आपकी ही कृपा पर बहुत कुछ अवलंबित है। आपकी सवारी बराबर उसी गंभीरता के साथ—शान-शौकत के साथ—चली जा रही थी। 'जहाज' के अनेक यूरोपीय यात्रियों ने इन महापुरुषों (!) के चित्र लेकर कैमरे की शोभा बढ़ाई, और दर्शन से नयनों को कृतार्थ किया; परन्तु वाह रे त्याग ! इन योगियों ने आँखें उठाकर भी कहीं नहीं देखा !! वे 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' के आदर्श को लिये हुए, बस उद्दिष्ट पथ पर चले ही जा रहे थे। देखा तो आज 'गौओं' को भी, पर जितने 'कैमरे' आज आपकी छवि लेने में तन्मय थे उतने तो क्या—एक भी इन गरीब 'गौओं' की तरफ न मुड़ा ! कहते हैं, 'गाय' और 'गधा' दोनों ही गरीब होते हैं, पर मैंने आज अनुभव किया कि गरीब गाय है, 'गधा' नहीं ! जिसे सब लोग देखें, इज्जत करें और जिसकी चर्चा सब जगह हो वह बड़ा हो सकता है, और यह सौभाग्य 'गधा' साहब को था, 'गाय' देवी को नहीं।

दूसरा नंबर 'ऊँटों' का है। ये भी खप्-खप् रेत में पैर फँसाते हुए कहीं-कहीं दूरी पर नजर आते थे। 'स्वेज' से सारा प्रदेश इजिप्ट, पैलेस्टाइन, जेरूसलेम आदि का लग जाता है। इस 'मरु' देश में बालुका ही है; और बालुका में 'ऊँट' तथा 'गधा' के आश्रय के सिवा कई स्थल ऐसे हैं कि जहाँ कोई गति ही नहीं होती। 'गधा' का उद्गम ही इजिप्ट में है। यहाँ का इतिहास इस प्राणी के बिना अधूरा रह जाता है। हमारे पाठक भी इतनी स्तुति सुनकर गधे के महत्त्व के अवश्य कायल हो जाएँगे !

❀ ❀ ❀ ❀

आठ बजे के लगभग 'स्वेज' नगर आया; यह एक छोटा-सा नवीन ढंग से बसा हुआ नहर के पश्चिम तट का मनोहर प्रदेश है। यह ऐतिहासिक नगर है। जब तक स्वेज-नहर से गमनागमन
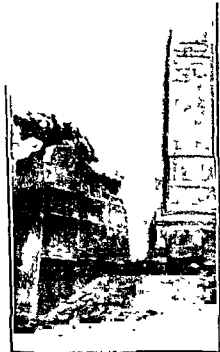
वा. मेमोरियल स्वेज कैनाल के प्रवेशद्वार पर) गत महासमर के अवसर पर भारतीय सैनिकों की पवित्र स्मृति में ६५ फीट ऊँचा कीर्ति-स्तम्भ !

(पृ० ३३ से ३७ तक)
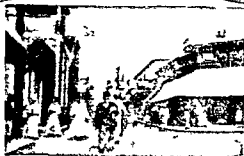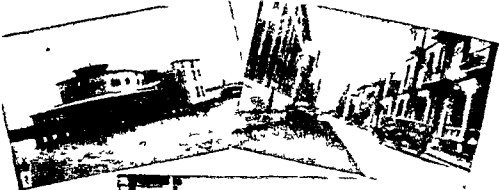
[१] स्वेज का कज़ीनो (नृत्य गृह)—(पृष्ठ ३१) [२] जुगजुल स्ट्रीट की ओर—
३] प्रख्यात 'कोलमेर स्ट्रीट' [४] जहाज मटमैली संकुचित नहर में—[५] कॅनाल में एक
के पीछे एक जहाज आ रहे हैं, और अरब की सवारी ऊँट [६] नहर का दीप-स्तम्भ (लाइट हाउस)
[७] स्वेज का रेलवे स्टेशन

का मार्ग नहीं था, तब तक यहाँ से ही खच्चरों और गधों के द्वारा जनता का आवागमन था। ऊँटों पर डाक जाती थी। सन् १८४२ तक पी० ऐंड ओ० की व्यवस्थापकता में ३००० ऊँट थे और 'कैरो' से राहगिरी होती थी।

'स्वेज' नहर खुलने पर इधर का मार्ग सरल हुआ है। यह मार्ग ८७॥ मील—भौगोलिक रीति से अंग्रेजी १०० मील के लगभग—है। आरंभ मे नहर का पाट ७२॥ फीट चौड़ा था। बढ़ते-बढ़ते अब वह १३५ फीट चौड़ाई का हो गया है। फिर भी एक छोटी-सी नदी को तरह मालूम होता है। विशालकाय 'जहाज' गटर मे घसीटा जा रहा हो—यही ज्ञात होता है; क्योंकि यहाँ जहाज की गति ६॥ मील प्रतिघण्टा से ज्यादा नहीं रहती। नहर की गहराई अंत तक ४० फीट से ज्यादा नहीं है। एकनारगी इसमे से दो लदे हुए भारी-भरकम जहाज साथ नहीं जाने दिए जाते। और जहाजों के मुकाबले में मेल-स्टीमर को प्रथम अवसर दिया जाता है। हमारा जहाज जब पहुँचा तो और भी जहाज 'स्वेज' पर प्रतीक्षा मे रुके दिखाई दिए; और यह 'मेल-बोट' था, इसलिए इसे सर्वप्रथम अवसर दिया गया। इस तटनी में से जाने के लिए जहाजी कम्पनियों को एक बार की रफ्तनी के ३००० पोंड भेंट करने पड़ते हैं, तभी प्रवेश पाने का अधिकार मिलता है। उपाय ही क्या है? कोई मार्ग भी तो नहीं है। इसी के बीच से गुजरना पड़ता है।

'जहाज' भी हवा का रुख, पानी का दबाव आदि देखकर जाने दिया जाता है। इन बातों की सारी व्यवस्था 'इस्माठिया' नामक स्थान की केंद्रीय व्यवस्थापक सभा के अधीन है। नहर मे 'पोर्ट सईद' तक गाड़ी की चाल से, बड़ी मंद गति के साथ, जहाज १२ से १५ घण्टे तक मार्ग-क्रमण करता है। राह मे १३ स्टेशन पड़ते हैं। इन पर कहीं जहाज ठहरता नहीं, पर ये छोटे-छोटे सुन्दर जल-तट के स्टेशन वायविक संदेश-वाहक स्तम्भों के जालों के अन्दर छुपे-से रहते हैं, और समस्त मार्ग की गति-विधि का कंट्रोल कर इधर से उधर संदेश देते
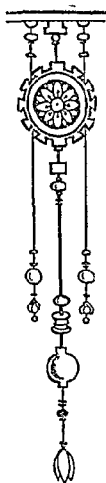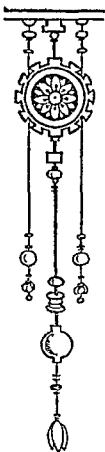
रहते हैं। जहाज बिना रुके इनका संदेश ग्रहण कर बढ़ा चला जाता है। 'ग्रेट बिटर लेक' में पानी का 'एरिया' थोड़ा बढ़ जाता है, तो जहाज की स्पीड (गति) भी बढ़ा दी जाती है। प्रतिदिन इस कनाल (नहर) में से १७ जहाज निकल जाते हैं, और उनमें ५५ फी सदी से भी ज्यादा जहाज 'ब्रिटिश' झण्डा फहराने वाले होते हैं! 'पोर्ट-सईद' से २४ मील पहले कनाल ही का 'कान्तास' नामक एक स्टेशन मिलता है। युद्ध के समय यह बनाया गया था। पेलेस्टाइन जानेवाली रेलवे का यह 'टर्मिनस' स्टेशन है।

रास्ते में खेत भी दिखाई देते थे। गेहूँ-मक्का की खेती हो रही थी। उनके आस-पास नहरें ले जाकर जल पहुँचाया जाता था। कनाल में दो बार सामने से आते हुए माल से भरे जहाज मिले। उसकी सूचना वायरलेस से पाकर हमारा जहाज नहर मे एक तरफ रस्सों से खींचकर किनारे लगा दिया—बाँध दिया गया था। जब दूसरा जहाज निकल गया तब यह छुटकारा पा सका। इस रस्साकशी के लिए दोनों ओर छोटी-छोटी नौकाएँ साथ चली जा रही थीं। कई छोटी-छोटी-सी नावें और भी आती-जाती रहती थीं, पर उनमें से रस्सा बाँध कर किनारे पर २-४ आदमी अपनी कमर से उस रस्से को लपेटे खींचते रहते थे। यह तमाशा मार्ग मे सर्वत्र दिखाई पड़ता था। एक तरफ बाँई ओर जो सड़क चली जा रही थी, उससे आने-जाने वाले यात्री, 'जहाज' के प्रवासियों के स्वागत मे हाथ या रूमाल हिलाते हुए, मुसकान-भरी मुद्रा से, चले जाते। दोनों तरफ थोड़ी देर के लिए खुशी की लहर दौड़ जाती; पर यह सागर की तरंगों की तरह क्षणिक ही थी।

रास्ते में विख्यात 'नाइल' नदी भी मिली। छोटे-छोटे ग्रामों के खेतों की हरीतिमा के भी दर्शन हो जाते थे, पर अधिकांश भूभाग पर बालुका ही बिछी हुई थी। राह में जिन लोगों के दर्शन होते वे प्राय: इजिप्शियन, अरबी काले और ग्रामीण जैसे ही होते। मार्ग में काला बुर्का ओढ़े हुए अरब रमणियाँ भी दिखाई

दीं। अनेक स्थानों पर बड़ी दूर-दूर से 'कार' द्वारा आकर अंग्रेज का समूह कूद-कूद कर तैरता हुआ दिखाई पड़ा। जहाज को निकट आया देख, जल-क्रीड़ा-निरत रहते हुए भी, प्रवासी-जनों को हाथ हिला-हिला कर मुसकाते हुए बिदा देते जाते थे। दोनों ओर से क्षण भर हँसी की लहर दौड़ जाती, और वे आर्द्रवसन अपनी सुध भूले-से रह जाते।

इस प्रकार बहुत ही गंभीर गति से 'जहाज' रात को ९ बजे 'पोर्ट-सईद' के निकट आया।
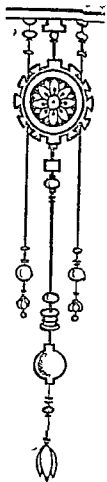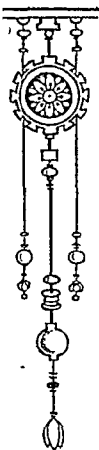
६
पोर्ट-सईद

अभी रात के ९॥ बजने में थोड़ी ही देर थी। आकाश में प्रकाश की किरणें किसी नगर के आगमन की सूचना देने लग गई थीं। ज्यों-ज्यों जहाज आगे बढ़ता था, उन किरणों की आभा अधिक मालूम होने लगी। धीरे-धीरे रंग-बिरंगी बिजली की बत्तियाँ स्पष्ट मालूम होती चलीं, मानों आसमान में तारक-मालिका फैली हुई है।

जहाज कुछ मील दूर रहा होगा कि 'पायलॉट' आया और उसने सीमा-प्रवेश की सुविधा सूचित की। अब दोनों ओर मार्ग के 'दीपदण्ड' पथप्रदर्शन करने लगे। जहाज ने भी गति मंद कर दी। जहाज के डेकों पर जन-प्रवाह बहने लगा। ज्यों-ज्यों नगर निकट आ रहा था, कुक्स के ऑफिस, दूकानों और 'शैंपियन' के विज्ञापन विविध रंगों में आकाश पर चित्रित होते दिखाई पड़ने लगे।

जहाज बन्दर पर आ गया। अब कई छोटी-छोटी नौकाएँ इजिप्शियन पुलिस अधिकारियों को लेकर जहाज के आसपास आने लगीं। सभी तुर्की टोपी पहने हुए सफेद और खाकी ड्रेस में सज्जित थे। जहाज पर इन्हीं का दौरदौरा था। यहाँ लकड़ी के बड़े-बड़े तख्तों से नावों के जरिये जहाज से तट तक पुल बना दिया जाता है। अब इजिप्ट के जाने और आने वाले यात्री लोग चढ़ने-उतरने लगे। नौकाओं का तो ताँता-सा लग रहा था। अनेक छोटी और बड़ी, सुन्दर और सादी, विविध स्वर के 'हॉर्न' वाली नौकाएँ जहाज के चारों ओर इस तरह घेरे हुए थीं, जैसे माता के पास बच्चे अंचल में छुपने चले आ रहे हों। वे एक-दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ लगा रही थीं। कभी पुलिस के अधिकारी अपनी 'फेवरिट'-नौका को निकट
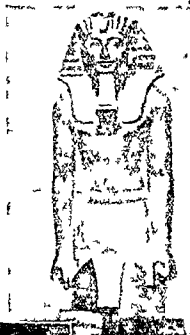
लाने की सहूलियत देते और दूसरी को डाँट-फटकार बतला रहे थे, पर वे तो एक-दूसरी के बीच घुसी ही चली आ रही थीं। जहाज की ये प्यारी बच्चियाँ अपनी इस 'अम्मा' की छत्रछाया में दौड़-धूप करती बड़ी सुहावनी-सी मालूम हो रही थीं। पोर्ट-सईद में भी जहाज, स्वेज की संकुचित नहर से निकल, ४॥ घण्टे श्रमहरण करनेवाला था, इसलिए लगभग 'पोर्ट-सईद' के दर्शकों ने (बीमार और जहाजी कर्मचारियों को छोड़) सारा जहाज खाली कर दिया।

इधर थोड़ी दूर पर इटालियन जहाज—'कोटेर्वेद' भी यूरोप से यात्रियों को लिये लौटा हुआ विश्रांति ले रहा था। दोनों के यात्रियों का इस 'मिस्र' की सीमा के बंदर पर स्नेह-सम्मेलन हो गया। कई भारतीय अपने घर जाते हुए प्रसन्न-वदन दिखाई दिए। जहाज से नीचे उतरते ही अरब लोगों और इजिप्शियन लोगों की टोलियाँ बुरी तरह आकर घेरा डाल देती हैं। हरएक नवीन यात्री को वे अपने जाल में फँसाने के यत्न करते हैं। यहाँ गुण्डई और व्यभिचार प्रथम श्रेणी का होता है। पहले तो ये कुछ वस्तु बेचने के बहाने अथवा 'कैरो', जेरूसलेम, पेलेस्टाइन, दारुसलाम आदि के चित्रों के बहाने आपसे बातें करते हैं, और फुसलाते हुए बातों में उलझाते हैं। फिर धीरे से पास सट कर कान में कहते हैं कि 'लवलव'। फिर डांस-हाउस का प्रलोभन भी देते, तथा 'नेकेड' (नग्न) नृत्य का भी मोहक सीन बतलाते हैं, ताकि यात्री इस कमजोरी में इनके कब्जे में आ जाय। यदि नया आदमी इनकी इस मोह-माया में फँस गया तो वह सहज ही छुटकारा नहीं पा सकता। लुट जाना तो सहज है। यह आश्चर्य नहीं कि वह जान से भी हाथ धो बैठे! अक्सर नया और युवक यात्री इनकी चालों में आ जाता है। फिर ये खूब लूट-खसोट कर छोड़ते हैं। वैसे इनकी सावधानी के लिए पुलिस भी लगी रहती है, पर ये आँखों में धूल झोंककर अपना मोहक जाल लोगों पर डाल ही देते हैं। कोई-न-कोई चिड़िया इनके फन्दे में आ फँसती है।
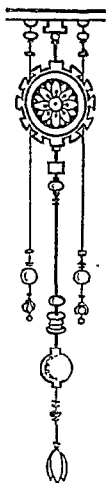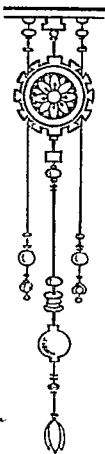
मेरे साथी ने मुझे इनकी गुण्डई का हाल बतला रखा था, मैं पहले ही सावधान था। उतरते ही दोनों ओर से इन धूर्त अरबों ने मुझे आ घेरा। एक फोटो दिखला कर इजिप्ट की सीनरी बेचना चाहता था, तो एक धीरे से कान में कह रहा था—'लवलव'। पहले तो मैंने इस 'लवलव' के रहस्य को नहीं समझा। पर जब एक अधखुले लिफाफे में से आधा सा निकला हुआ नग्न चित्र देखा तो तुरत मेरे ध्यान में आ गया कि यह 'लवलव' क्या बला है। मैं बार बार दुतकारता जाता था, पर बराबर सारे रास्ते भर दो दो व्यक्ति आते-जाते थे, और 'लवलव' कह कर मुझे फँसाने का यत्न करते जाते थे। मैंने उनकी तरफ जरा भी ध्यान नहीं दिया, तब भी वे निराश नहीं होते थे। मौका पाकर फिर एकाध बार वही 'मंत्र' सुना देते थे। यह क्रम एक दल का दल यात्रियों के साथ जारी रखता है। कुछ कमजोर मनचले युवक इनके मायाजाल का शिकार बन पीछे पीछे हो भी लेते हैं। इस तरह इनका व्यवसाय यहाँ बड़े जोर से चलता है। शहर में सहसा पुलिस इनमें दस्तन्दाजी करती नहीं देखी गई। बाद में मालूम हुआ कि वे तो चाहते हैं कि उनके देश में किसी प्रकार 'आय' हो। इसमें देश की क्या हानि है। पता नहीं, यह कहाँ तक ठीक है, पर पुलिस देखती रहती है—ये दल-के-दल, हर यात्री के पीछे-पीछे, रहते हैं।

यहाँ ठगी भी हद दर्जे की है, आदमी कीमत का खयाल भी नहीं कर सकता। एक पौंड जिस वस्तु का पहले दाम कहा जाता है वह अगर आप न लें तो धीरे-धीरे उतर कर एक शिलिंग में भी आपको दे दी जावेगी। इस ठगी की भी कोई हद है ? यहाँ अक्सर पर्शिया और इजिप्ट के कालीन बड़े सुन्दर और बढ़िया ढंग के प्राप्त होते हैं। कैमरे बहुत सस्ते और अनेक तरह के होते हैं।

इजिप्ट की कॉफी बहुत प्रसिद्ध है। मैंने इस कॉफी की प्रशंसा सुन रखी थी। हम लोग एक सुप्रसिद्ध होटल में गए, और हमारे 'डिनर मदर' के साथ तीन कप कॉफी का आर्डर

दिया गया। कॉफी तैयार होकर सामने आने में जितनी देर लगी, उतनी देर तक हमारा वहाँ बैठना बहुत कष्टकर हो गया। बराबर अरब लोग कुछ-न-कुछ बेचने के बहाने से हमें शांतिपूर्वक बैठने न देते थे। पहले तो मैंने समझा, मेरी 'टोपी' मुझे विदेशी साबित कर हैरानी का कारण बन रही है। टोपी निकाल कर रख ली, पर वे न माने। बराबर रूमाल, टर्किश कैप, बटन, कालीन आदि लिये वे तंग करते जा रहे थे। लोग प्रायः सभी काले-कलूटे बदशकल और गंदे, पैर तक सफेद चोगा पहने हुए रहते थे। कॉफी आई। जिस इजिप्शियन कॉफी की प्रशंसा सुनते हुए मैं ऊब गया था, वह सामने आई, एक घूँट लेते ही मैं तो सन्न रह गया। निहायत कड़वी, बिना दूध की थी वह, और पीने से बहुत गर्मी बढ़ा देती है, इसलिए साथ में एक ठण्डे पानी का गिलास भरा हुआ था। यह अजीब ढंग था। मैं तो गले में उतार न सका। वह कप निराश्रित उपेक्षित की तरह मेरी तरफ देखता हुआ—टेबल की शोभा बढ़ाता रहा। फिर उसे छूने का साहस नहीं हुआ। ४ प्यास्ता (यह इजिप्शियन सिक्के का नाम है) नजर कर उस अरबी कलर की कॉफी से फंदा छुड़ा बाहर आए।

अब पोर्ट-सईद देखने की ठहरी। यह बहुत छोटा-सा स्थान है। मुश्किल से ४-५ सड़कें साफ हैं और उन्हीं पर दूकानें लगी हुई हैं। शहर मे गंदगी, मैलापन, मांस-मदिरा के स्थान और होटल की ही भरमार है। एक-एक होटल पर वही अरबी लोग भयावनी शकलों मे चाय-काफी लेकर शोर-गुल करते दिखाई देते हैं। वही ग्रामोफोन की नृत्य-गीत की रिकार्डें जहाँ-तहाँ चल रही थीं। इजिप्ट के लोग तो बहुत कुछ अंग्रेजी सभ्यता में मिलते-जुलते जा रहे हैं। वे गौरवर्ण, सभ्य थे। स्त्रियाँ इंग्लिश फ्रॉक पहने हुए थीं। अरबियों की बस्ती तो यहाँ अत्यन्त खतरनाक भयावनी मानी जाती है। लोग रात के समय उधर जाते हुए भय मानते हैं। छोटा-सा बाजार चमकदार जरूर है। वैसे रात को ११ बजे शहर की सब दूकानें बंद कर दी जाती हैं;
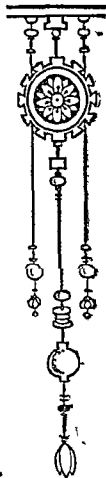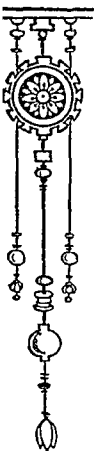
लेकिन 'पोर्ट' होने के कारण जहाज के ठहरने तक होटल, कुछ दूकानें, कैबेरा (नाच-घर) आदि खुले रहते हैं।

'कुक' की एक दूकान यहाँ बहुत बड़ी सजी हुई है। इस जगह अवश्य सभी चीजें ठीक भाव में मिल सकती हैं। इस दूकान पर धोखा कम है। डांस यहाँ का मशहूर है। यात्री लोग प्रायः इस जगह जाते हैं। नग्न-नृत्य के दृश्य देखकर लुट आते हैं।

एक इटालियन होटल बहुत बड़ा बना हुआ है। यहाँ इटली के लोग हैं भी बहुत। चेलाराम नामक सिन्धी जौहरी की भी दूकान है। यहाँ आनेवालों को बहुत सावधान होकर आना चाहिए।

पोर्ट-सईद की बस्ती १०८५९२ जनता की है, जो मुस्तली नेटिव, इटालियन, ग्रीक, फ्रेंच तथा अंग्रेज मिलाकर है। कस्टम का त्रास तो यहाँ भी है। चाकू, छुरी, पिस्तौल वगैरह शस्त्रास्त्र की बड़ी जाँच होती है। अनेक बैंक, पार्क आदि बने हैं। यहाँ का सर्चलाइट बड़ा पावरफुल है, जो बहुत दूर तक समुद्र-मार्ग को प्रकाशित करता रहता है। यहाँ से स्थलमार्ग द्वारा कान्तारा, स्वेज, कैरो, अलक्झेंड्रिया, लग्सर और जेरूसलम आदि जाया जाता है। वायुयान का मार्ग भी यहाँ से है।

'कैरो' इजिप्ट की राजधानी है। अलक्झेंड्रिया नये प्रकार से एक सुन्दर साफ-सुथरा बसा हुआ नगर है। कैरो तो इजिप्ट की प्राचीन संस्कृति का ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण नगर है। यहाँ का म्यूजियम, पिरामिड और पुराने सम्राटों की ममी आदि अजीब वस्तु हैं। भारतीय संस्कृति के साथ इजिप्ट की पुरातनता भी इतिहास-जगत् की ख्यात वस्तु है। पर महाकवि इकबाल के शब्दों में 'यूनाने-मिस्र रोमा सब मिट गए जहाँ से···।'

मिस्र के अतीत वैभव एवं इतिहास का स्मरण करते हुए तथा वर्तमान उध्वस्त इजिप्ट के दर्शन करते हुए फिर अपने जहाज में लौट आए। यहाँ से कई इजिप्शियन स्त्री-पुरुष नये यात्री बन कर आ गए थे। रात के १ बजे पुनः जहाज ने लंगर उठा दिया, अब वह भूमध्यसागर [मेडेटेरियन सी] में दौड़ रहा था। ❀ ❀

७

भूमध्य-सागर

भूमध्यसागर (मेडेटेरियन-सी) में प्रवेश करते ही जहाज में थोड़ी हलचल शुरू हो गई, लहरों में फिर तूफानी हवा जोर मार रही थी। लाल-सागर की गर्मी एकदम गायब हो चुकी थी, और भूमध्यसागर की शीतल वायु पुनः वासन्ती समीर वहा रही थी। सायंकाल गर्म में वस्त्र पहनने की आवश्यकता हो गई थी। यात्रियों को इस अवस्था से बहुत सावधान रहने की जरूरत रहती है। लाल-सागर की गर्मी को न सहकर जो लोग महीन कपड़ों को धारण कर लेते हैं, वे एकदम रात में पलट जानेवाली शीतल समीर में यदि खुले बदन केबिन से बाहर आ जायँ तो निमोनिया के शिकार हो सकते हैं।

भूमध्य-सागर में प्रवेश करते ही सावधानी से शरीर-रक्षा कर लेनी चाहिए। अवश्य ही उष्मा से तप्त होने से वासन्ती सीमर के सेवन से आनन्दलाभ होता है; परन्तु थोड़ी-सी भूल भी इस आनन्द के लिए महँगी हो जाती है। जहाज रात को १॥ बजे ही 'मेडेटेरियन' में प्रवेश कर चुका था। मैं प्रातःकाल उठा, और केबिन से ज्योंही बाहर आया, हवा के एक हल्के से झोंके का हृदय पर धक्का-सा लगा। मैंने इसकी परवा न की। दोपहर होते-होते तो शरीर शिथिल होने लगा और संधियों में थोड़ी पीड़ा भी हुई। मैंने आज कुछ 'फल' लेकर ही 'लंच' पूरा किया और आलस्यवश अपने केबिन में विश्रान्ति लेने चला गया। ३॥ बजे होंगे, मिस्टर छगनलाल ने आकर जगाया, पूछने लगे—"आज आपने भोजन क्यों नहीं किया ?" मैंने सब हाल कह सुनाया। तब मिस्टर छगनलाल ने कहा—"आप पड़े न रहें, चाय लीजिये और चलिये जरा मेरे साथ, आपको जहाज की मशीनरी के दर्शन करा लाएँ।"
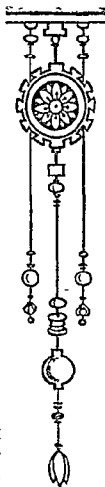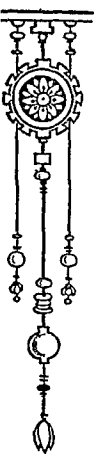
मैंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, और उठकर पीछे-पीछे हो लिया। 'टी-रूम' में जाकर चाय ग्रहण की और मशीन देखने के लिए जहाज के अंतस्तल में प्रवेश किया। मैं यह जानने के लिए बहुत उत्सुक था कि जहाज का संचालन किस प्रकार होता है, मशीनरी की क्या व्यवस्था है। धीरे-धीरे नीचे गहरे अन्धकार मे उतर गया। मालूम हुआ कि यह मशीनों वाला भाग बहुत जल के अन्दर ही रहता है। यहाँ कभी भयावनी गर्मी और कभी शीतल वायु का स्पर्श हो जाता था। यह वायु कृत्रिम थी। असली नहीं, अपने वस्त्रों को सम्हाले मैं भीषणाकार मशीनों के बीच होकर चला जा रहा था। जहाज का निम्न-स्तर समस्त यन्त्रालय ही बना हुआ है। मिलों के बॉयलर्स की तरह बड़े-बड़े लोहे के वजनदार भयानक आकार-प्रकार वाले कल-पुर्जे लगे हुए थे, जो सतत गति से अपने कर्म में रत थे। इनके घोर गर्जन के अन्दर उष्मा और शैत्य के अजीब मिश्रण मे, अन्धकार और विद्युत्प्रकाश की रेखाओं में, 'आदमी' नाम के विविध स्वरूप वाले पशु—प्रायः प्राणी—इस 'सागर-नगर' के समस्त भार को, अपने प्राणों की बाजी लगा, लिये जा रहे थे। इनके जीवन पर दया आती थी। मैं कुछ क्षण भी वहाँ ठहरने में घबरा रहा था। सूर्य-प्रकाश और स्वच्छ वायु का अभाव मुझे व्याकुल बना रहा था।

पर ये प्राणी यदि—चाहे स्वार्थवश ही क्यों न हो—आत्माहुति न दें तो गमनागमन अवश्य कठिन हो जाय। सामुद्रिक आपत्ति और महासागर की तूफानी तरंगें सर्वप्रथम इन्हीं को शिकार बनाती हैं। जो जितना नीचे समुद्र की सतह के निकट वाली केबिन में रहता है, वह उतना ही त्रस्त होता है। सेकंड-क्लास, थर्ड-क्लास के यात्री लहरों के तूफान से ज्यादा त्रस्त होते हैं, क्योंकि उनका आवास जहाज के नीचेवाले भाग मे होता है। प्रथम श्रेणी के यात्री लहरों की हलचल का अनुभव तो अवश्य करते हैं, पर कष्ट कम। ऐसी स्थिति में जो मशीनमेन हैं, जो सबसे नीचे के 'स्तर' में कार्य करते हैं, उनकी क्या दशा होती

होगी ? मेरे साथ वहीं का एक कार्यकर्ता साथ हो गया था। वहं मशीन के उतार-चढ़ाव, भयानक चक्रों का वायुवेग की तरह निरंतर भ्रमण, जल के अन्दर पानी को काटते जाने वाले पंखे को घुमाने वाला रावणाकृति चक्र, कृत्रिम वायुवाहिनी भीषण नलिका आदि दिखलाता गया। परन्तु मैं व्याकुल हो रहा था। थोड़ी देर तक तो साहस के साथ देखता रहा। अंततः शुद्ध वायु के अभाव मे घबरा कर मिस्टर छगनलाल को ले बाहर निकल ही आया। फिर अपने केबिन की शरण ली। शरीर शिथिल तो था ही। थोड़ा ज्वर हो आया, डेक पर नहीं गया। रात को ११ बजे तक मिस्टर खाँ, मि० गोंघलेकर, मि० राघवन, मि० छगनलाल आदि के साथ गप्पें मारता रहा, और निद्रा के वश हो गया।

ता० ११ को सागर फिर शांत हो गया था। लहरों में अजीब स्तब्धता थी। जहाज अभिमान-पूर्वक द्रुत गति से विस्तीर्ण जल-पथ में बढ़ा चला जा रहा था। दोनों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियों की धूमिल रेखाएँ दिखाई दे रही थीं। लगभग १। बजे इटली की दो पहाड़ियाँ दिखाई दीं। ये और कोई नहीं—विख्यात 'सिसली' और 'सेलेब्रिमा' नामक छोटे-छोटे टापू थे। जहाज इन्हीं दोनों के बीच संकुचित मार्ग से जानेवाला था। २—३ मील की दूरी पर से ही इन पहाड़ों पर बसे हुए नगर के विशालकाय स्टेचू, घण्टाघर और स्मारकों के दर्शन होने लगे। ज्यों-ज्यों निकट आते जा रहे थे, नगर की शोभा आकर्षण का विषय बन रही थी। कैमरों के रुख उसी तरफ थे। लञ्च लेने को भी आज उतने लोग नहीं आये थे, जितने इन नगरों की सुन्दरता देखने डेक पर डटे हुए थे। जहाज यहाँ ठहरता नहीं है, इसलिए दोनों ओर जन-समूह उमड़ रहा था। सिसली तो इस समय नव-वधू की तरह सजी हुई थी। ध्वजा-तोरण, वंदनवार और बिजली की लताएँ सर्वत्र फैली हुई थीं। हजारों इटालियन झंडे नगर पर फहरा रहे थे। जनता की दौड़-धूप भी खूब दिखाई दे रही थी।
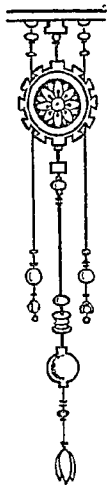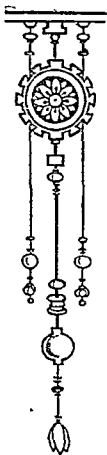
जहाज जब इन पहाड़ियों के बीच से गुजरा तो नगर की कई सड़कें सजी हुई दूर-दूर तक दिखाई दे रही थीं। कारण यह था कि अभी-अभी मुसोलिनी इस नगर मे आया हुआ था। आज उसका वह भाषण हुआ है जो यूरोप में खलबली मचा देने का कारण बना है। भूमध्य-सागर (मेडेटेरियन-सी) की समस्या को लेकर उसने आज के भाषण से सामुद्रिक भय का जन्म दे दिया है। बहुत निर्भीकता-पूर्वक आज उसने सिंह-गर्जना की थी कि इटली को किसी से भय नहीं है, वह अपना बिगड़ा हुआ भविष्य भी तोड़ कर बना सकता है, उसको अपनी महती शक्ति पर पूरा विश्वास है और जो उससे मुकाबले का साहस करेगा वह स्वयं टकराकर चूर्ण हो जायगा, इत्यादि गर्वोक्तियाँ इसी 'सिसली' द्वीप के ५ मिनट वाले भाषण में की हैं। यह वही द्वीपकल्प था, जिसके कोने से की हुई गर्जना से चौंक कर सुदूरपूर्व स्थित शक्तिशाली राष्ट्र अमेरिका का प्रेसिडेण्ट भी भय की आशंका से अपना दौरा स्थगित कर वापस आ गया था; और ब्रिटेन तो इस चर्चा से इस तरह चौकन्ना हो गया कि शीघ्र ही मेडेटेरियन मे उसने अपनी 'नेव्ही' (जल-सेना) का जाल बिछा दिया था। यह बाद मेरी समझ मे आया कि 'सिसली' इतनी क्यों सजी हुई थी।

'जहाज' अपने क्रम से इन द्वीप-युग्म को पार कर आगे बढ़ा। अब भी दूर-दूर पर पहाड़ों की छाया-सी दिखाई पड़ रही थी। ४॥ बजे पुन. एक पहाड़ आया। यह आग उगल रहा था। नीचे चारों ओर सागर से घिरा था, और ऊपर की शिखा धूम्र के फव्वारे छोड़ रही थी। उन धूम्रपटलों के साथ कभी-कभी शोले भी ऊपर आ जाते थे। एक तरफ लावा भी बहता नजर आ रहा था, परंतु मानवजाति का साहस भी तो देखिए कि इसी पहाड़ी के दक्षिणोत्तर भाग पर उसने मकान बनाकर अपना आवास भी बना रखा है! इनका जीवन कितना क्षण-भंगुर है! चाहे तो ज्वालामुखी एक धक्के में सारे द्वीप को समुद्रसात् कर दे, या कहीं अन्यत्र से पहाड़ का पेट फूट

जाय, और अग्निदेव मृत्यु के मुख में इन्हें ले जाकर लीन कर दें। इन्हें भाग जाने के लिए सागर के सिवा अन्य कोई आश्रय नहीं। परंतु यह सब जानते हुए भी वहाँ दो-दो महाकाल की दाढ़ों के बीच मानव नामक साहसी प्राणी ने डेरा डाल रखा है। इस अग्निमुख-धूम्र-शिखी पर्वत के अनेक फोटो निकले। पहाड़ों का सिलसिला तो अब भी जारी था, पर संध्या ने कैमरे को बन्दी बना बिठला दिया था। लोगों की दौड़-धूप भी वह नहीं रही थी। मुझे आज रात में भोजन नहीं करना था। इस लिए थोड़ी देर खेल-कूद, घुमाई-फिराई कर अपने केबिन में आ गया, और पत्र लिखने में लगा रहा।

लगभग रात के ९—९॥ बजे होंगे, पूना के मिस्टर मुहम्मद सहसा आए, कहने लगे, 'पंडित जी ! जरा ऊपर चलिए। आज तो आप ही कुछ बतला सकेंगे कि क्या होने वाला है।"

मैंने पूछा—'आखिर क्या बला आ गई !'

वे बोले—'आप ऊपर तो आइए।'

मैं नाइट-ड्रेस में था। नाइट-गाउन चढ़ा उनके साथ ऊपरी डेक पर आया। उन्होंने आसमान की तरफ इशारा करते हुए मुझे बतलाया कि निर्मल आकाश में 'चन्द्र' खून की तरह लालिमा-युक्त हो रहा था, और मित्र-गण भी बड़ी भीत और उत्सुक मुद्रा से यह दृश्य देख रहे थे। मैं भी देखता रहा। वास्तव में ऐसा 'रक्ताक्त' चन्द्र, बिना आसपास किसी कारण के, विशेष विस्मय-जनक बन रहा था। मैंने उनसे कहा कि यह तो स्पष्ट है कि यह उत्पात की सूचना है, रक्तपात का चिह्न है। चन्द्र द्वारा ऐसी अनेक घटनाओं की सूचना मिलती रहती है, परंतु देखना यह चाहिए कि यह यहीं दिखाई पड़ता है या अन्यत्र भी। यदि और जगह भी दिखाई पड़े तो किस-किस देश या दिशा में इसका प्रभाव पड़ेगा, यह ज्ञात हो सकेगा। निःसंदेह यह भयोत्पादक है, युद्धसूचक है; परंतु किस-किस तरफ ? यह और सूचनाएँ प्राप्त होने पर ही ज्ञात होगा। लगभग आध घण्टे तक 'डेक' पर खड़े-खड़े हम लोग 'चन्द्र' को देखते जाते थे, और सविस्मय चर्चा कर रहे थे।
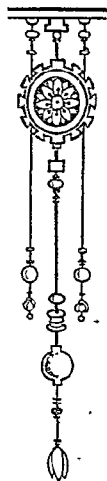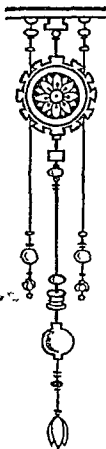
खाँ साहब बोले—"दुनिया कहाँ जा रही है, यह स्पष्ट ही दिखाई पड़ रहा है, यह भी उसी खतरे का इशारा है !" धीरे-धीरे हम लोग अपने केबिन में आए और बिस्तर पर पड़े रहे। चन्द्र कब तक खूनी बना रहा, पता नहीं, हमारे मस्तक में भी यही विचार चलते रहे। न जाने कब निद्रा आ गई।

प्रातःकाल फिर 'मेसीना' और 'रहूम्बोली' नामक पहाड़ियों (द्वीपों) के बीच से जहाज निकला। यह वीरशिरोमणि नेपोलियन की स्मृति-भूमि है। लोगों के सिर आदर से उन प्रस्तरावशेषों—कीर्तिशेषों के सामने सहसा झुक गए। मार्ग में एक ज्वालामुखी और भी छोटा-सा मिला। 'सरडानिया' और 'कोरसिका' की पहाड़ियों के बीच से फिर एक बार जहाज को गुजरना पड़ा। यहाँ भी दूर-दूर से मालूम होता था, जनावास है। मकानों के धुँधले चित्र मालूम हो रहे थे।

रात को आज 'कन्सर्ट' हुआ। 'जहाज' के गायकों और वादकों ने तरंगों पर स्वर-सृष्टि से एक मधुर वातावरण उपस्थित कर दिया। यात्रियों मे जो-जो कलाविद् थे, उन्होंने अपनी-अपनी कोमल कलाओं का प्रदर्शन कर लोकरंजन किया। हमारे साथियों में मि० गोंधलेकर वंशी-वादन मे बहुत प्रवीण थे; परंतु बहुत ही संकोचशील व्यक्ति। उन्हें मिस्टर खाँ और समस्त संगी-साथियों ने विवश किया कि आपको आज अपने देश की कला का एक प्रतिनिधि बनकर इस आयोजन में भाग लेना पड़ेगा। हम लोग आपका नाम सूचित कर देते हैं।

मिस्टर खाँ ने आग्रह-पूर्वक, उनके संकोच करते हुए भी, नाम सूचित कर प्रोग्राम में शरीक करवा दिया। रात को जब स्वर-लहरी प्रवाहित हुई, तब अनेक पाश्चात्य गायकवादकों में मिस्टर गोंधलेकर ने अपनी भारतीय वेष-भूषा में वंशी पर 'राधेकृष्णा बोल' की तान छेड़ी, समस्त दर्शक-समूह तन्मय बन गया; और तालियों से इनका बार-बार अभिनन्दन किया। यही एक भारतीय थे, जिन्होंने उस रात को पाश्चात्य जनों के संगीत मे भारतीय स्वर-साधना कर सभी को प्रसन्न कर छोड़ा।

८

मार्सेल्स की ओर

आज प्रातःकाल सूर्य की सुनहरी रश्मि-मालाएँ, उल्लास-मयी लहरों के साथ खेलती हुई, विविध रंगों के फव्वारे छोड़ रही थीं। हमारे जहाज के आस-पास बड़ी दूर-दूर तक अनेक मछुओं की डोंगियों का जाल-सा बिछ गया था। समुद्र तो शांत था, पर इन डोंगियों का क्रीड़ा-कौतुक भी कम दर्शनीय न था। सागर की उस शुभ्र चादर पर काली-नीली-लाल डोंगियाँ चित्र-कारी की तरह शोभा पा रही थीं। बहुत सुहावना दृश्य था वह! इन मछुओं के भय से, कई जगह, प्रशांत-सागर की स्तब्धता को भंग करती हुई मछलियाँ भी छलाँग मारती दिखाई दे जाती थीं। इस क्षणिक उछल-कूद में भी ये मछलियाँ बड़ी भयावनी मालूम पड़ती थीं। इन बेचारी डोंगियों की क्या बिसात जो इन मत्स्यों को बन्दी बना सकें? इनके एक झपट्टे में मय मछुओं के ये सागर की एक ही लहर के नीचे दब जा सकती हैं। फिर अस्तित्व कल्पना का विषय भी न हो सके। इस भय के रहते हुए भी शतशः डोंगियाँ अपना जाल डाले सागर की लहरों पर आंदोलित हो रही थीं। इन डोंगियों ने आकर आज 'सागर-नगर' के यात्रियों को यह आश्वासन दे दिया था कि अब शीघ्र ही स्थल-प्रवास आरंभ होगा।

जहाँ चित्त में यह आनन्द उदित हो रहा था कि अब यूरोप की वैभवोन्मादमयी भूमि के दर्शन होंगे, सारी नवीनताएँ दिखाई पड़ेंगी, अनेक वर्षों से मन में रहनेवाली साध पूरी हो रही है, वहाँ जहाज के १४ दिन के इस रसमय जीवन का भी पटाक्षेप होगा! अब ये सागर की वीचि-वल्लरियाँ अपना क्रीड़ा-कौतुक न दिखा सकेंगी। रात के समय तारागण से
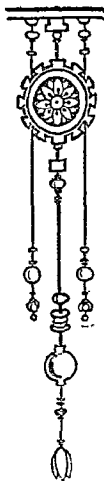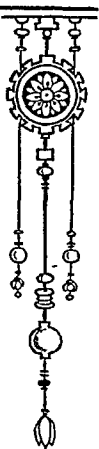
जटित शुभ्र चादर ओढ़े चाँद का मुखड़ा, लहरों से आँख मिचौनी करता, उनके ऊपर हजार-हजार खण्डों में विभक्त हो, रसमय क्रीडा करता हुआ दिखलाई न पड़ेगा।

और साथी ?

ये तो अब अपने-अपने उद्दिष्ट पथ के पथिक हो विभिन्न दिशाओं में कूच कर जायँगे। ये कहीं होंगे, और हम कहीं! सागर-नगर का 'संसार' बिखरकर हरएक का नया-नया और अलग-अलग निर्मित होगा। ये बातें एक-एक कर याद आने लगेंगी, और वियोग के दु ख में भावी नवीनता का काल्पनिक सुख-उल्लास विलीन हो जायगा।

मैं, लहरों के साथ विचारों की सहस्र धाराओं को मिला, उदार-महोदधि के विशाल वक्ष स्थल पर तैरते हुए, कल्पना के महासागर में डूबता-उतराता जा रहा था। सहसा डेक पर एक तूफानी हलचल हुई, शोर-गुल और सागर की तरफ सबकी दृष्टि को केंद्रित होता देख, विचारों का ताँता टूट गया, मैं भी उधर तुरंत आ गया। जहाज के सैकड़ों यात्री 'शॉर्प' नामक महान् मत्स्य को निर्भीकता से जाते हुए देख रहे थे। उसका आकार-प्रकार अवश्य ही भयंकर था। मस्त गति से वह चला जा रहा था। उसके शरीर को देखकर तो मालूम होता था, जहाज-जैसा 'नगर' भी उसके एक थपेड़े से 'भूकम्प' का अनुभव कर सकता है। ऐसे बड़े जन्तु के आज ही इतने दिनों मे दर्शन हुए। यात्रियों में भय-सचार हो गया था। निरंतर अगाघ उदधि मे संचरण करनेवाले निराश्रित जलावलंब 'जहाज' को ऐसा एक ही भीषण जन्तु खिलवाड़ के लिए छेड़ दे, तो यह दो-ढाई हजार प्रवासियों से भरा हुआ 'सागर-नगर' 'फुटबाल' की तरह एक निमिष में समुद्र-सात् हो जाय! ऐसी स्थिति में मानव की क्षुद्रता, क्षणभगुरता, नगण्यता का सहज भान होने लगता है। ठीक भी है—

प्रिय सखे! सागर-नगर मे
प्राण का अभिमान कैसा ?

कमल-दल-सा सलिल-निधि में
वह रहा यह यान कैसा ?
है तरंगित वीचियाँ
खुल खेलतीं, निर्बाध निशि-दिन !
बन रही चंचल, कहानी—
कह रही, ले राग छिन-छिन !
ताल लेकर पवन से—
स्वर-लहरियाँ रसमय बनी हैं !
आज जीवन में—
क्षणिक-जीवन ! अरे ! अनजान कैसा ?
प्राण का अभिमान कैसा ?

आज रात को ही हमारा यह १४ दिनों तक निरंतर गति से चलनेवाला जहाज मार्सेल्स में पहुँच जायगा, और हमारी यह जल-यात्रा एक प्रकार से पूरी हो जायगी। कल का दिवस स्थल-यात्रा से आरंभ होगा। स्मृति पर अनेक कल्पना-चित्र बन रहे थे—मिट रहे थे। उत्साह, बिछोह, आनन्द और खिन्नता का विचित्र सम्मिश्रण-सा हो रहा था। सभी अपने-अपने सामान समेट रहे थे, आज रैनबसेरा खाली होने जा रहा था। जहाज के वे कर्मचारी, जो प्रवास ही में जीवन के सुख-दु.ख का अनुभव किया करते हैं, अपने इन क्षणस्थायी प्रवासी मित्रों से एक मोहक रिश्ता जोड़ लेते हैं। उनके चेहरे पर भी आज एक अजीब म्लानता थी। वे 'नत्थूभाई' नामधारी जीव ! जो जहाज की प्रवासिनी प्रेयसी के पीछे कामुकता का पाश लिये घूमते थे, जिनका फुर्सत का समय इन अंग्रेज कुमारियों की प्रेम-लीला में लहर की तरह लोल रहता था ! उनका यह आराम-गाह—क्षणिक प्रणयलीला का एक परिच्छेद, कल पूरा होने जा रहा था ! वे दोनों (प्रणयीयुग्म) विषण्ण-वदन हो रहे थे। इनके चहरे पर आज भावों का उतार-चढ़ाव भी देखते ही बनता था।
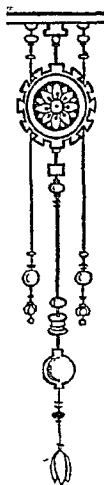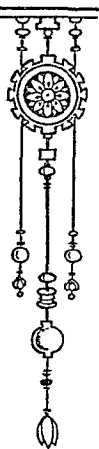
केबिन की गृहस्थी समेटी जा रही थी। जहाँ-तहाँ आज के दिन का यही कार्यक्रम था। बालकों की मण्डली ही ऐसी थी जो इस विकार-वेदना से विरहित थी। उन्हें क्या? उतरना-चढ़ना, उनके लिए सब समान था! वे जहाज के अपने 'शिशु क्रीड़ा-विभाग' वाले कमरे में उसी तरह लकड़ी के घोड़ों पर, हाथी पर, मोटरों पर सवार हो आनन्द की किलकारियाँ भर रहे थे। उनकी निर्विकार मस्ती, दौड़-धूप उस क्रीड़ा-विभाग को सजीव बनाए हुए थी। और, वे 'बीमार', जो जहाज के हास्पिटल-विभाग में नर्सों के अधीन थे? उन्हें तो अवश्य संतोष की साँस आने लगी होगी; क्योंकि वे कल मार्सेल्स मे उतरकर उपचार के निश्चित स्थान पर शीघ्र ही पहुँच जायँगे। वे जहाज के आनन्द-विलास-मय जीवन से निर्लिप्त-से ही थे।

अब जहाज मे वे ही रह जाने को थे, जो 'जिब्राल्टर' होकर लन्दन तक सीधे जानेवाले थे। इन लोगों की संख्या प्रतिशत ५ ही रही होगी। वे इसलिए उदासीन हो रहे थे कि कल जहाज में एक सन्नाटा-सा छा जायगा। और हाँ, उन काले साहबों के सुख-दु:ख की कल्पना हमे करने का अधिकार ही क्या है, जो जहाज के जीवन मे भी कमल-पत्र की तरह एकांत साधना में रहे, जो न अपनों से मिलते थे, न दूसरों से। फर्स्ट क्लास के अधिकांश काले साहब रिजर्व ही रहते थे। वे अपने देशवासियों से मिलना तक हेय मानते थे। पता नहीं, उनको इस जहाज के छोड़ने का सुख था या दु:ख। उनकी मनोवृत्ति समझने में कोई विशेष मानस-शास्त्रज्ञ ही शायद सफल हो सके! जिस प्रकार यूरोप के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के स्त्री-पुरुष जहाज में एक परिवार-सम, एकरस, हो गये थे, वैसी एकता भारतीयों में प्रायः नहीं-सी देखी! अनेक देशबंधु एक दूसरे से कभी परिचित न हो सके। भारतीय यात्रियों मे दो-तीन सहृदय प्राणी ऐसे भी थे जो अपना प्रेमी परिवार बढ़ाने के स्वयं यत्न करते, उन्हें भी 'काले साहबों' से निराशा हो जाती थी। हमारे सहयात्रियों में बंबई के एक युवक तो ऐसे थे जो भारतीयों से

चौंकते, परन्तु वे अंग्रेज कुमारियों के पीछे कैमेरा लिये घूमा करते ! हाँ, आज उन्हें यह अवश्य अखरेगा कि उनका कैमेरा अब इन सुन्दरियों के 'इमेज' कल से न पा सकेगा !

धीरे-धीरे शाम हुई। अब मैंने भी उन्मन हो अपने केबिन का बिखरा हुआ सामान समेटा। सुनसान-सा लगने लगा। न तो आज खाने में मन लगा, न खेलने में ! रात हुई, चन्द्रदेव ने लहरों से खेल-कूद आरम्भ की। पर वह आज इतना उत्साहित, इतना आह्लादित नहीं था। तारे भी झिलमिल हो रहे थे। सागर शांत था। रात का 'डांस' भी उतना प्रमोद-पूर्ण प्रतीत नहीं हुआ। वियोग-व्यथा से व्यथित-हृदय प्रवासीगण अपने-अपने केबिनों में निद्रा की गोद में आश्रय पाने आने लगे। 'सागर-नगर' में विचित्र प्रकार की उदासी-भरी शांति फैल रही थी !

८
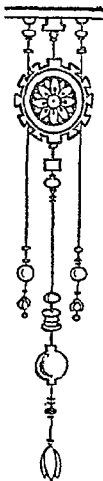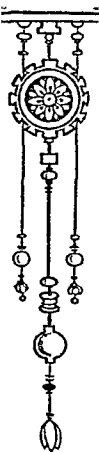
उदधि के उस पार !

प्रातःकाल जब निद्रा भंग हुई, कानों में एक विचित्र कोलाहल सुनाई पड़ा। सहसा पलँग छोड़ उठकर खिड़की से झाँक कर देखा—चारों ओर हरित भूमि थी, और सुन्दर भवनों को सूर्य की लाखों किरणें सोने से नहला रही थीं। रेलगाड़ियों, मोटरों, बसों और जनता के यातायात का संयुक्त शब्द एक विशाल नगर के तट के आगमन की सूचना दे रहा था। यह मार्सेल्स ही था। रात को न जाने कब यहाँ आकर जहाज ने विश्रांति ले रखी थी। नगर के दक्षिण तट पर जहाज रुका हुआ था। अभी नीचे जाने की इजाजत नहीं थी; न वे सीढ़ियाँ जहाज से मिलने ही आई थीं, जिनके लगते ही मानव के चरणयुगल स्पर्श का सुखानुभव करने आगे बढ़ते हैं, फिर अंतिम छोर को छूए बिना मानते नहीं। अभी पासपोर्ट-ऑफिसर भी नहीं आए थे। प्रवासियों ने जल्दी-जल्दी में आज चाय और ब्रेक-फास्ट ले लिया था। अब पासपोर्ट-परीक्षा की प्रतीक्षा थी। ठीक आठ बजते ही सदलबल फ्रेंच अधिकारियों की टोली आ पहुँची। जहाज के यात्री एक-एक कर उसके सामने पेश होने लगे। 'पासपोर्ट' के फोटो से चेहरा मिलाकर जाँच की जाती, और एकाध प्रश्न (यदि आवश्यक हुआ) कर लिया जाता और छुट्टी मिलती। इस तरह मेरा भी नम्बर आया। दो मिनट में अपनी कॉपी पर स्वीकृति ले चिंता से मुक्त हुआ।

जहाज से सामान उतारना शुरू हो गया था। एक ओर पर्वताकार सामान जमा किया जा रहा था। सीढ़ी भी ९ बजे के लगभग लगी, और जहाज क्षण-भर में खाली हो गया। अब कुलियों ने नीचे पोर्ट-स्टेशन के कस्टम में सामान जमा करना शुरू

किया। कस्टम क्या था? वह एक कांजीहौस ही था। आस-पास चारों ओर पटियों पर लम्बे-चौड़े हॉल में सामान क्रमशः सजाया जा रहा था। बीच में कस्टम के कर्मचारीगण हाथ में चॉक लिये टहल रहे थे, और बाहर यात्री अपने-अपने सामान की प्रतीक्षा में। बंदर के द्वार पर उतरते ही जिनके पास फ्रेंच मनि (फ्रेंच सिक्के) न हों उनके लिए एक्सचेंज (परिवर्तन) का छोटा-सा आफिस खोल रखा था। वहाँ अनेकों ने अपने इंग्लिश सिक्कों को बदला।

अब कस्टम की बारी थी। यहाँ 'कुक' के तथा अन्य ट्रेव्हलर्स कम्पनीज के एजण्ट लोग अपने-अपने यजमानों की खोज में पण्डों की तरह घूम रहे थे। कुली की तादाद बहुत कम रहती है, इसलिए लोगों को अपना सामान लाने, उतारने में बड़ी दिक्कत पेश आती है। इन कुलियों में लापरवाही भी ज्यादा है। सामान लेकर घण्टों 'कस्टम' जाँच की प्रतीक्षा में तपस्या करनी पड़ती है। प्रातःकाल ९ बजे हम जहाज का मोह छोड़, नये नगर-निरीक्षण के उत्साह में भरे हुए, फ्रांस की भूमि पर उतरे थे, किंतु १२ बजे तक हमारी पेटियाँ उस कस्टम के प्रांगण में मुँह खोले सतृष्णभावेन पड़ी रहीं। इधर मेरी मनःस्थिति भी बहुत व्यग्र थी, भूख अलग सता रही। 'कस्टम' वास्तव में 'कष्टम' (और यह एक 'कस्टम' भी थी) था, वह 'सुखम्' कैसे हो सकता था? मैं मन ही मन इस प्रथम पदार्पण के समय परेशानी से घबरा रहा था। मेरे साथी, जो इधर का अनुभव भी रखते थे, न जाने क्यों दुबके रहे। वे अकर्मण्य बन रहे थे। इससे तो जहाज ही में बैठे रहना ठीक होता। इस स्टेशन पर कहीं बैठने को भी जगह नहीं थी। एक भी बेंच नहीं थी, बड़ी मनहूसियत थी। मेरी तरह अनेक प्रवासी इसी दशा में थे। बम्बई के सुप्रसिद्ध डॉ. मूलगाँवकर (और उनका परिवार) इधर-उधर टहलते-टहलते थक गए। अन्ततः आपने अपनी पेटी को जमीन पर खवार कर सहारा लिया। यहाँ यह रोजाना का कार्यक्रम ही ठहरा।
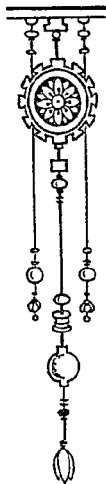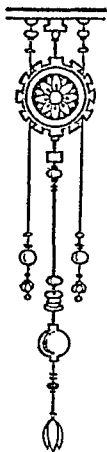
मुझे तो इतने बड़े बन्दरगाह की इस अवस्था पर बहुत खेद हुआ। यात्रियों की अधिकता के कारण कस्टम-जाँच में विलंब होना स्वाभाविक है। ऐसी हालत में उन्हें सुविधा देने का खयाल पोर्ट के अधिकारी को क्यों नहीं होना चाहिए ? खड़े-खड़े पैर भी दर्द करने लगे थे।

आखिर १२॥ बजे 'कुक' के एक भले आदमी आये, उनसे अपनी रामकहानी कह सुनाई। बेचारे सहृदय थे, उन्होंने कस्टम के रुक्ष कर्मचारी को समझा-बुझाकर हमारी पेटी के निकट ला दिया। उसने सामान की परीक्षा की। १५-२० मिनट में उससे फंदा छूटा, तब कहीं जान में-जान आई। तब हमने अपना सामान ठेले में लदवा कर लिफ्ट के हवाले किया, और नीचे उतर टैक्सी में विश्राति ली।

इस निरंत अविश्रांत उदासीनता-भरी हालत से निकलकर मैं यूरोप के प्रवेश-द्वार (नगर) के अदर चला जा रहा था। अनेक जहाज यहाँ खाली होकर शून्यता अनुभव कर रहे थे। विशालकाय पोर्ट है यह। नगर की शोभा और चहल पहल देखता हुआ एक होटल के निकट आ ठहरा। कमरा दिन-भर के लिए किराए पर ले मैंने सतोष की साँस ली! स्नानादि से निवृत्त हो सर्वप्रथम चाय की मधुर आराधना का ध्यान हुआ। होटल की फ्रेंच रमणी ने आकर प्रश्न किया—'लेमन' की चाय लीजिएगा या दूध-सहित ? मैंने इसके पूर्व नीबू की चाय नहीं ली थी। मेरे साथी ने कहा, आज 'लेमन की चाय' ही ली जाय। यह 'फ्रेंच' स्टाइल की 'टी' है! क्षण भर बाद नीबू के गोल टुकड़े के साथ उबली हुई चाय सामने आ गई। इस 'फ्रेंच-टी' का स्वाद बडा सोंधा और मधुर था। इससे निपटकर उदरपूर्ति के लिए कमरा छोड़ नीचे उतरे। हमारे होटल से लगा हुआ ही भोजन का एक स्थान था। वहाँ जाकर उबले हुए आलू, टमाटो, गाजर और कुछ मिठाई ली। फलों की तो यहाँ खूब बहार थी—अगूर, खरबूजे, नासपाती, पेअर्स का स्वाद ले पेट की ज्वाला को शात किया। कुछ देर विश्रांति के लिए पुन

अपने कमरे में पलँग की शरण ली। मेरे साथी को 'कुक' के आफिस से कुछ दर्याफ्त करना था। वे उधर से आये, तब तक मैं विश्राम कर अपने ड्रेस में सज्जित हो गया था। अब हम नगरनिरीक्षण करने का विचार कर होटल से निकल पड़े।

भारत में जो स्थान वम्बई का है, लगभग वैसा ही यूरोप में मार्सेल्स का है। भारत का विशाल पोर्ट वम्बई है, तो यूरोप में जाने के लिए मार्सेल्स है। यहाँ भी बड़ी चहल पहल है। प्रतिदिन अनेक जहाज यहाँ आते हैं और अपना सारा भार उतार कर हल्कापन अनुभव किए चले जाते हैं। वन्दर पर अनेक जहाज खड़े हुए दिखाई देते हैं। नगर, पोर्ट के उत्तर में वसा हुआ है। फ्रांस वैसे ही सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है, इस नगर में प्रवेश करते ही पग-पग पर सुन्दरता के दर्शन होने लग जाते हैं। यहाँ की भाषा फ्रेंच है! पोर्ट होने के कारण इंग्लिश का प्रचार भी कम नहीं है, फिर भी साइन-बोर्डों, वर्त्तमान पत्रों आदि में फ्रेंच भाषा ही व्यवहार की जाती है।

नगर बहुत बड़ा है। भव्य प्रासादों से नयनाभिराम रूप में सजा हुआ है। सारा शहर दो भागों में विभक्त होकर भी एक-सा है। पुरानी वस्ती में गलियाँ और पुरानी पद्धति के पथरीले विशाल प्रासाद बने हुए हैं, और नया नगर अभिनव कला से ओतप्रोत है। परन्तु पुराने नगर के आसपास ही नया शहर वसा हुआ है, इसलिए प्राचीनता और नवीनता का सुन्दर संमिश्रण हो गया है। पुराने नगर मे ऐतिहासिकता के दर्शन किए जा सकते हैं। ईसा के पूर्व चौथी शताब्दि तक के चर्च यहाँ, अपनी रचना मे प्राचीन शिल्प-कला और इतिहास को अंकित किए हुए, उन्नत-मस्तक खड़े हैं। नगर के मध्य भाग मे वने हुए सुन्दर उद्यान और अनेक फव्वारे कला-प्रेमियों को आकर्षित किये बिना नहीं रहेंगे।

मार्सेल्स का हेंगिंग ब्रिज [झूलता हुआ पुल], जो प्रतिदिन सहस्रों यात्रियों के यातायात का साधन है, २६४ फीट तक अपनी विशालता और निपुण एंजीनियरों की उच्च कृति का
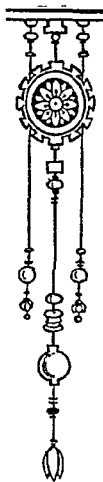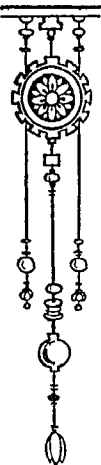
उदाहरण बन, झूल रहा है। इस पुल से समस्त मार्सेल्स का दृश्य देखते ही बनता है—खासकर रात्रि के समय। जब सारा नगर बिजली की रंग बिरंगी रोशनी से प्रकाश परिधान कर लेता है, तब सौन्दर्य पान करने के लिए आपके तृषित नयन अनिमिष अटके रहेंगे, घण्टों तक अघायेंगे नहीं। आठ लाख जनसंख्या वाला यह मोहक नगर यों सहज ही नहीं देखा जा सकता। यहाँ टूरिष्ट-कारें प्राप्त होती हैं। यों तो टेक्सियाँ और घोड़ागाड़ी भी यहाँ खूब चलती हैं, परन्तु जिसे परिचय न हो, वह टेक्सी के पंजे में फँस कर फजीहत हो जायगा। टूरिष्ट-बसों के द्वारा कुछ समय में ही सारे नगर के प्रमुख स्थान देखे जा सकते हैं। प्रति व्यक्ति २० फ्रेंक देकर आप जब नगर दर्शनार्थ 'केनबियर' नामक नगर-मध्य की विशाल सुप्रसिद्ध रोड से बढते हैं, तब दाहिनी ओर 'पुराना पोर्ट', 'टाउन हॉल' आता है और बाईं तरफ वह सुप्रसिद्ध 'सेस्पेंशियन ब्रिज' रहता है। यहाँ उस 'केथोड्रल सेंट मेरी मेज्योर' नामक महान् भवन के दर्शन होते हैं, जो फ्रांस के मध्ययुग के अनन्तर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति का नमूना माना जाता है।

वास्तव मे इसकी रचना बड़ी ही आकर्षक है। बहुत उत्कृष्ट कोटि की कारीगरी इसमे की गई है। इग्लिश गोथिक प्लान के अनुसार ब्रेजेण्टाइन स्टाइल से इसका निर्माण किया गया है, परतु बहुत कुछ 'रोमनशिल्प' से भी उधार लिया गया है।

१०

उदधि के उस पार

[२]

आगे चलकर पुनः ओल्ड पोर्ट में प्रवेश करते ही दो भव्य फोर्ट दिखाई देते हैं। एक फोर्ट सेंट-जीन (St. Jean) नाम का है, जिसका उपयोग माल्टा के नाइट्स ने किले के लिए किया था और दूसरा 'सेंट फोर्ट निकोलस' (St. Nicholas) है। इस किले का १४ वीं, १५ वीं शताब्दी में बहुत उपयोग किया गया था। इसके पीछे ४ सौ साल का इतिहास है। आजकल यहाँ बैरेक्स और सैनिक-जेल है। यहीं 'शेटो-डे-इफ' भी दर्शनीय स्थान है जो 'कौण्ट आफ माइण्टे क्रिस्टे' में अमर हो गया है। इनके पार करने के लिए वही २६४ फीट लम्बा झूलता हुआ 'सस्पेंशियन ब्रिज' है। फिर आगे बढ़ने पर फोर्ट से घिरे हुए ऐतिहासिक 'सेंट व्हिक्टर' (St. Victor) नामक चर्च के पास आ जाते हैं। यह ५वीं शताब्दी का बना हुआ पुराना भव्य चर्च है। इसको देखकर भारत के पुराने मंदिरों की अवश्य याद आ जायगी। इसका निर्माण बड़ा कलापूर्ण है। इसके अनंतर हम एक बहुत रम्य हरी-भरी पहाड़ी पर, एक सीधी जानेवाली बिजली की गाड़ी से—जो लिफ्ट की तरह है, ऊपर चढ़ते हैं। यहाँ फ्रांस का जग-विख्यात मनोहारी चर्च 'नोत्रे दाम दी-ला गार्डे' (Notre Dame De-la Garde) है। यह ४९२ फीट ऊँचा और रोमन-ब्रेजेण्टाइन-स्टाइल से बना हुआ है। यह कला का बहुमूल्य और उत्कृष्टतम नमूना है। सारा चर्च एक कला का मंदिर ही कहा जा सकता है। इतनी ऊँचाई पर इस महान् कलाकृति का निर्माणकर शिल्पियों ने अपनेको अमर बना लिया है।

इस पहाड़ी से मार्सेल्स की शोभा देखते ही बनती है। सारे नगर में बागों, सड़कों और भवनों की छटा अनुपम मालूम
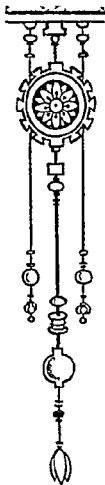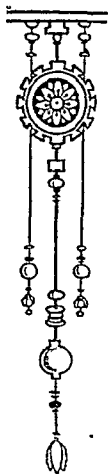
होती है। इस पहाड़ी के नीचे होकर पार्क 'बौलेवर्ड दी-ला कॉर्डरी' (Baulevard De-la Carderle) से कॉर्निच् रोड तक सागर-तटवर्ती एक मोहक मार्ग चला जाता है। सारा मार्ग मनोहारी उद्यान-सा ही है। इनके बीच-बीच में रेसकोर्स, शेटोस और दो म्यूजियम हैं। एक में पुरावत्त्वसंबन्धी साहित्य संग्रहीत है और एक नेचरल-हिस्ट्री-संबंधी म्यूजियम है। प्रादो (Prado) के आसपास सीधे वृक्षों की बड़ी दूर तक कतार चली गई है। यह वृक्षावली बड़ी सुन्दर लगी हुई है। आसपास छोटे-छोटे गाँव भी आ गए हैं। 'बौलेवर्ड डी-ला मेडेलिन' होते हुए 'पैलेस लॉग कैम्प' पर जाने का रास्ता है। आसपास यहाँ 'फाइन आर्ट म्यूजियम' है। यह फ्रेंच कला-कोविदों की कारीगरी देखने का प्रमुख स्थान है। फव्वारे भी इतनी सुन्दरता से बनाये गए हैं कि वहाँ सहसा पैरों की गति रुक ही जाती है। इस मनोरम उद्यान में पीछे की ओर छोटा-सा 'जन्तु-घर' भी है।

इसके बाद 'चर्च आफ सेंट हिन-सेंट-ड-पॉल' है। यह १३वीं शताब्दि का गोथिक आर्ट से बना हुआ है। इसका दूसरा नाम 'रिफार्म्स आफ इंग्लिश' भी कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त नए-पुराने चर्चों में व्हर्जिन मेरी, सेंट ल्यूक, सेंट एण्ड्रू, लॉ मेज्योर, सेंट मेरी मेज्योर, ला पार्टे द-एक्स का स्मारक भी ऐतिहासिक महत्त्व रखनेवाले स्थान हैं। और दर्शनीय स्थानों में—पैलेस आफ लॉग चेम्प, माउण्टे कार्लो-ला पाप्द, ट्रान्स थार द-एर, प्लेस फाउण्टेन, फाण्टेनी, इंग्लिश चर्च, ब्रिटिश चेम्बर आफ कामर्स, इण्टर नेशनल, रोटरी क्लब, स्कायर ड-दा बॉरसे इत्यादि हैं।

मार्सेल्स में अमेरिका, चीन, जापान, इंगलैंड, इटली, रोम, ग्रीस, जर्मनी, इजिप्ट, ईराक, डेन्मार्क आदि अनेक देशों के कौंसिल-जनरलों के आफिस हैं। मार्सेल्स के आसपास लगे हुए और भी अनेक सुन्दर स्थान हैं। प्राविंस का केपिटल-एक्स (Aix), रोमन्स का एक्सेक्टी, मॉल के अंदर की पुरानी बस्ती, ये १८ मील के निकट के स्थान हैं। इस प्रांत का 'व्हेनिस' माना जाने
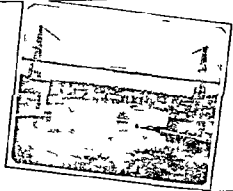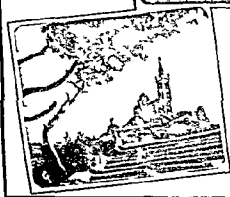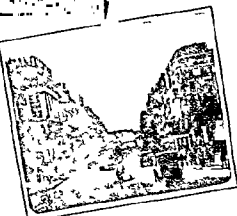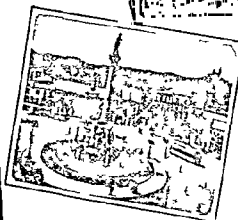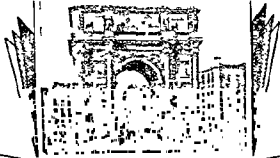
(१) प्राचीन किले का प्रवेशद्वार (२) स्वाधीनता की देवी, नगर के मध्य का सुन्दर विस्तार्ण चौराहा और भव्य भवन पंक्ति (३) प्रख्यात केन् बिग्रर रोड (४) कलापूर्ण प्रासाद और उद्यान तथा फव्वारों से अलंकृत एक आकर्षक चौराहा (५) ऐतिहासिक कलाकृति का अद्भुत नमूना नोत्रेदाम दि ला गार्डे चर्च (६) बंदरगाह—पोंइट ट्रॉन्स बोर्डेर (मार्सेलिस्) (पृष्ठ ४६– ६३)
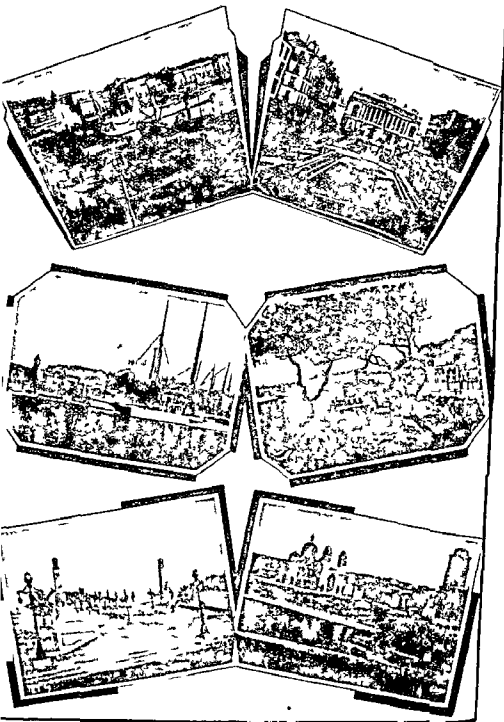
१) जहाजी बन्दरगाह और पुराना गोदाम (२) बोर्में स्क्वॉयर (३) पोर्ट पर जहाज खाली हो रहे (४) उद्यान और स्तावेंहिन कानिग्स्राड ५) स्मारक भवन, और ऐतिहासिक साहित्य-महालय का भव्य भवन (६) सेंटर्मान के ओटूका क्षील में अपना प्रतिबिंब निहार रहा है।

वाला सुन्दर ऐतिहासिक ध्वंसावशेषों की भूमि मॉर्टिन्स भी पड़ोस ही मे है। यह तो कलाविदों का 'तीर्थ' ही कहा जाता है। इन सब स्थानों तक जाने के लिए रात-दिन मोटर-बसें चला करती हैं, यातायात बना ही रहता है।

हॉटेल्स तो बडे ही सजे-सजाए इतने भव्य भवनों मे हैं कि किसी भी महल को लज्जित कर सकते हैं। शाम को जिस सड़क पर निकल जाइए, हॉटेल्स मे हजारों नर-नारी विविध रंगों में सजे-सजाए चाय आदि पेय मे लगे रहते हैं। हमने यहाँ एक नई प्रथा देखी। चाय पीजिए, फल खाइए या खाना खाइए, आपको पैसों का बिल माँगना नहीं पड़ेगा, न पूछना ही होगा। आप जिस डिश् (तश्ती) मे खा रहे हैं, या गिलास मे पेय ले रहे हैं, उसी को थोड़ा उलट कर देखिए, पैसे की तादाद बनी हुई है—जैसी वस्तु आप माँगेंगे, उतनी ही कीमत जिस डिश् या गिलास पर अंकित है, वही पात्र आपके सामने आएगा। आप अपना उपहार लीजिए, कीमत देख कर चुका दीजिए—बस 'गुड बॉय'। कहने-सुनने की या शांति भंग करने की जरूरत नहीं, लोगों का व्यवहार बहुत सभ्यता का होता है। हाँ, प्रमुख बंदर होने के कारण धूर्त्तता भी यहाँ उसी दर्जे की मानी जाती है, फिर भी फ्रेंच-मनोवृत्ति मे नम्रता रहती है। हॉटेल्स, रेस्टॉरेंट आदि खूब कलापूर्ण बने हुए हैं। उनकी भव्यता, सजावट की विविधता, सहसा प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। हमने मकानों की दीवारों मे एक विचित्र बात देखी। पुताई या पक्के पेण्टिंग के विपरीत यहाँ अन्दर बड़ी सुन्दरता के साथ कागज चिपकाये जाते हैं। ये खास तरह से ऐसे चिपका दिए जाते हैं कि दीवार पुती है अथवा पेण्ट की हुई है, सहज ज्ञात नहीं होता। मकान सुन्दर भी दिखाई देते हैं। यहाँ कोई गन्दापन इनमें हो नहीं सकता, इसलिए हर वक्त साफ-सुथरे रहते हैं।

मार्सेल्स में सभी देशों के लोगों की बस्ती है। अरब, इजिप्शियन, निग्रो आदि गरीब भी कम नहीं हैं। ये अजीब तरह
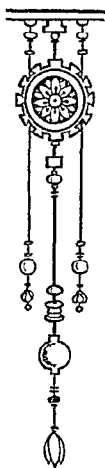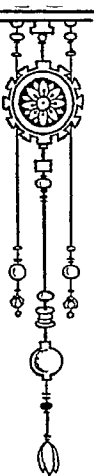
की वेशभूषा में उस शुभ्र देश के 'गालवोट' (दिठौना) से लगते हैं। फ्रेंच पुरुषों और स्त्रियों के चेहरे में 'भारतीयता' मालूम होती थी। ट्राम्स भी शहर में चलती हैं, पर वे तो बंबई से भी गई-बीती थीं। पुरुषों को दाढ़ी-मूँछ रक्खे हुए भी बहुत देखा। बाजार के लिए जब हम शहर की दाहिनी ओर घूमते हैं तो गुलदस्ते बेचनेवाली दूकानों की कतारें मिलती हैं। यहाँ आप एक क्षण रुक ही जायँगे। भारत की तरह यहाँ भी मालिनें फूल तो बेचती हैं, पर ये फूलों की तरह कोमलांगी, शुभ्र कलेवरा, तितलियों की तरह सजी हुई फ्रेंच रमणियाँ उन गुलदस्तों को, फूलों को, वैसे ही सजाकर रखती हैं जैसे गलीचे! मानों फूलों की क्यारियाँ लगा रखी हैं! पहले मैंने समझा, यहाँ कोई उत्सव होगा। सारी दूकानें खास तौर पर सुभग शृंगार करके रखी गई हैं। फिर विदित हुआ कि ये तो मालिनें हैं।

इन बातों से भी एक आश्चर्य-भरी बात देख मैं तो विस्मित रह गया। अनेक जन्तुओं के भक्षक मांसाहारियों के किस्से सुने थे। मार्सेल्स की सैर करते हुए बाजार में एक लाइन की लाइन मैंने सीप, घोंघे, शंख आदि सामुद्रिक-तट-जन्तुओं की दूकानें देखीं। मैंने ऐसे विविध रूप के छोटे-बड़े घोंघे, शंख आदि नहीं देखे थे! एक दूकान पर रुका और यह तमाशा देखने लगा। कई खरीदार आते और उसे 'व्हेराइटी' (विविधता) को संग्रहीत रूप में खरीदते जाते। मैंने समझा, ये किसी विशेष उपयोग में आते होंगे। मेरे साथी भी इन दूकानों की वस्तुओं के उपयोग से अनभिज्ञ थे। रात को हम एक रेस्टोरेंट में गए; वहाँ अनेक 'पोर्ट'-वासी भोजन कर रहे थे। उनके सामने उबली हुई सीपें, घोंघे और शंख डिशों में भरे रखे थे। वे बड़े शौक से स्वाद लेते हुए, सीपियों के संपुट खोल उसमें के कीट के रस में डबलरोटियों को भिगो कर, खा रहे थे। कई तो उस जीव-रस को चमचों की अंजलि से उदरस्थ कर रहे थे। तब कहीं उन दूकानों की बिक्री का रहस्य मेरी समझ में आया। मुझे बड़ी घृणा हुई। सागर-तट-वासी जनों

के भक्ष्य बन सीपी, घोंघो, शंखों ने पनाह माँग ली थी। मैं तो उठ खड़ा हुआ। अपने हॉटेल के कमरे में आया और दूध, फल से पेट की पूर्ति की।

इस स्वल्प आहार से निवृत्त होकर रात की शोभा देखने बाहर निकला। अभी सिनेमा जाने में गाड़ी की प्रतीक्षा करनी थी। पीछे ही हज्जाम की दूकान दिखाई पड़ी। जहाज के १४ दिन बाद आज यह कर्म भी कर्तव्य था। फ्रेंच-नानूराम (उसका नाम मैंने नानूराम रख दिया था, क्योंकि घर पर मेरे बालों की सेवा नानूराम पर ही अवलंबित है) से १५ मिनट तक बाल बनवाए। इस बीच शॉप की अधिष्ठात्री ने हमारे लिए टेक्सी रोक ली थी। २॥ शिलिंग भेंट कर टेक्सी में सवार हो हम एक फ्रेंच सिनेमा गए। यहाँ के सिनेमा अधिकांश कण्टीन्यूस (लगातार) चलते रहते हैं। ४ फ्रेंक (लगभग ८ आने) देकर आप शाम से रात के १ बजे तक—जब तक ये चलते हैं—सिनेमा देख सकेंगे। विविध फिल्में खत्म होती जाती हैं, चलती जाती हैं। हमने २-३ खेल देखे। भाषा फ्रेंच ही बोली जाती थी। हमारे साथी जो थोड़ा-थोड़ा समझते थे, भाव कहते जाते थे। सभी फिल्में सुन्दर, वीरतापूर्ण और एक प्रकार से अपने प्रोपोगेण्डा के लिए चलाई जा रही थीं। अपनी विशेषताओं के दृश्य और न साथ किसी ताजी घटना का प्रदर्शन किया जा रहा था।

अब हमें 'जिनेवा' के लिए यहाँ से गाड़ी पर सवार होना था, रात को ११ बजे हमने 'मार्सेल्स' से विदा ली, और गाड़ी में चढ़े।

११

आस्ट्रिया की ओर

मार्सेल्स की सैर कर, रात को पौने बारह बजे की गाड़ी मे सवार हो, हम ऑस्ट्रिया जाने के लिए रवाना हुए। आज से पुनः रेल-पथ द्वारा यात्रा का आरंभ हुआ। यूरोप की रेलवे के बारे में हमने बहुत कुछ सुन रखा था, पर हमें तो यहाँ के रेलवे के दर्शन से अधिक संतोष नहीं हुआ। डब्बों का बाह्यवर्ण तो बहुत मट-मैला और निहायत भद्दा रहता है। धूम्र के फव्वारे छोड़-छोड़ कर वह स्वयं भी 'धूमिल' बन गई है। प्लेटफॉर्म पर जबरदस्त भीड़-भाड़ हो जाती है। उसी भीड़ में मुश्किल से लोगों को धक्के देता हुआ, कुली अपने ग्राहकों के सामान लाद, गाड़ी धकेलता चला जाता है। भारत की तरह रेलवे-पुलिस प्लेटफॉर्म पर व्यवस्था के लिए विशेष सतर्क नहीं रहती। इधर कुलियों की भी कंगाली-सी है। प्रायः यात्री स्त्री-पुरुष अपना-अपना सामान लादे खुद ही चले आते हैं, कुली की गरज कम रखते हैं। सफर मे उन्हें निकट या कहीं दूर भी जाने के लिए किसी विशेष सामान की आवश्यकता नहीं होती। बिस्तर और आवश्यक सामान इस देश में सर्वत्र सुलभ है, इसलिए साथ में अटेची और सूट-केस रख लेते हैं, एकाध बरसाती, ठण्ड हुई तो कंधे पर ओवर-कोट पहन लिया; बस, यही सामान होता है जिसे वे सहूलियत से उठा लेते हैं, रख लेते हैं।

हमारी मुश्किल थी; हम तो कई हजार मील से आ रहे थे, अतएव हमारा सामान हमारी आवश्यकता के अनुरूप विशेष ही था। हमें कुली की जरूरत थी, कुली मिला, पर कठिनाई से, और ये होते भी लापर्वाह हैं, ज्यों-त्यों करके प्लेटफॉर्म पर भीड़ को चीरते हुए पहुँचे। इतनी भीड़ थी कि मुझे चिन्ता होने लग गई—आज हम सवार भी हो सकेंगे या नहीं? ठीक ११।।।

बजे गाड़ी आई, और जन-समूह उस पर टूट पड़ा। रह-रहकर मुझे तो भारत के थर्ड-क्लास का ध्यान आ जाता था। गाड़ी को थोड़ी देर में 'गाड़े' की शकल मिल गई। हमारे कुली ने भी उसी धक्के में हमें ढकेलना आरंभ किया। हम सेकण्ड क्लास के यात्री थे। बहुत कठिनाई के अनंतर दो सीटें हमें प्राप्त हो सकीं, फिर भी सैंकड़ों यात्री बेचारे दालान में खड़े थे, उनके लिए सीट नहीं। इस तरह १० मिनट के बाद गाड़ी ने उद्दिष्ट मार्ग पर द्रुत गति से चलना आरंभ किया।

सेकण्ड-क्लास के एक-एक कमरे में ८ से ज्यादा सीटें नहीं थीं। सीटें थोड़ी सहूलियत वाली आराम-कुर्सी की तरह होती हैं। सेकण्ड और फर्स्ट क्लास के डब्बों के अंदर मखमल लगा रहता है और कुर्सीनुमा मखमल भी होता है। पर डब्बों में सामान रखने की बहुत कम जगह होती है। छोटे से सूट-केस या अटेची के सिवा अंदर डब्बे में कोई सामान नहीं आ सकता। ज्यादा सामान हो तो 'लगेज' में ही सिपुर्द करना पड़ता है। डब्बे भी छोटे रहते हैं। कमरे के बाहर एक दालान रहता है, जहाँ लोग फिरते रहें तो बैठनेवालों का हर्ज नहीं होने पाता। इस तरह सारी ट्रेन में आप दालान के जरिये घूम सकते हैं। एक डब्बे से दूसरे का कनेक्शन रहता है। पर हमारी यात्रा टेढ़ी थी। यात्री सारी गाड़ी में—दालानों में—बुरी तरह फँसे हुए थे। टिकट होते हुए भी वे खड़े-खड़े सफर कर रहे थे। हाँ, वे भारत की गाड़ी के प्रवासी की तरह आपस में लड़ने पर उतारू नहीं होते कि 'तूने भी पैसे दिये हैं, और मैं मुफ्त में नहीं आया हूँ;' 'सीधा बैठ' आदि। वे चुपचाप रात के नीरव पथ पर द्रुत गति से तारक-मालिका निहारते चले जा रहे थे। उन खड़े रहनेवालों के पैरों की हालत उनका मन ही अनुभव कर रहा होगा। यह 'सेकेण्ड क्लास' का हाल था। हमारे पैर सिकुड़ कर फँसे हुए थे, कुर्सी से बाहर हमारा कोई अधिकार नहीं था। फिर रास्ता भी घिरा हुआ, बाहर जाने-आने के लिए पूरे व्यायाम की जरूरत, एक-दूसरे की शांति भंग होने का भय। पैर सुन्न हो रहे थे।

११
आस्ट्रिया की ओर

मार्सेल्स की सैर कर, रात को पौने बारह बजे की गाड़ी में सवार हो, हम ऑस्ट्रिया जाने के लिए रवाना हुए। आज से पुनः रेल-पथ द्वारा यात्रा का आरंभ हुआ। यूरोप की रेलवे के बारे में हमने बहुत कुछ सुन रखा था, पर हमें तो यहाँ के रेलवे के दर्शन से अधिक संतोष नहीं हुआ। डब्बों का बाह्यवर्ण तो बहुत मट-मैला और निहायत भद्दा रहता है। धूम्र के फव्वारे छोड़-छोड़ कर वह स्वयं भी 'धूमिल' बन गई है। प्लेटफॉर्म पर जबरदस्त भीड़-भाड़ हो जाती है। उसी भीड़ में मुश्किल से लोगों को धक्के देता हुआ, कुली अपने ग्राहकों के सामान लाद, गाड़ी धकेलता चला जाता है। भारत की तरह रेलवे-पुलिस प्लेटफॉर्म पर व्यवस्था के लिए विशेष सतर्क नहीं रहती। इधर कुलियों की भी कंगाली-सी है। प्रायः यात्री स्त्री-पुरुष अपना-अपना सामान लादे खुद ही चले आते हैं, कुली की गरज कम रखते हैं। सफर में उन्हें निकट या कहीं दूर भी जाने के लिए किसी विशेष सामान की आवश्यकता नहीं होती। बिस्तर और आवश्यक सामान इस देश में सर्वत्र सुलभ है, इसलिए साथ में अटेची और सूट-केस रख लेते हैं, एकाध बरसाती, ठण्ड हुई तो कंधे पर ओवर-कोट पहन लिया; बस, यही सामान होता है जिसे वे सहूलियत से उठा लेते हैं, रख लेते हैं।

हमारी मुश्किल थी, हम तो कई हजार मील से आ रहे थे, अतएव हमारा सामान हमारी आवश्यकता के अनुरूप विशेष ही था। हमें कुली की जरूरत थी, कुली मिला, पर कठिनाई से, और वे होते भी लापर्वाह हैं, ज्यों-त्यों करके प्लेटफॉर्म पर भीड़ को चीरते हुए पहुँचे। इतनी भीड़ थी कि मुझे चिन्ता होने लग गई—आज हम सवार भी हो सकेंगे या नहीं ? ठीक ११।।।

बजे गाड़ी आई, और जन-समूह उस पर टूट पड़ा। रह-रहकर मुझे तो भारत के थर्ड-क्लास का ध्यान आ जाता था। गाड़ी को थोड़ी देर में 'गाड़े' की शकल मिल गई। हमारे कुली ने भी उसी धक्के में हमें ढकेलना आरंभ किया। हम सेकण्ड क्लास के यात्री थे। बहुत कठिनाई के अनंतर दो सीटें हमें प्राप्त हो सकीं, फिर भी सैकड़ों यात्री बेचारे दालान में खड़े थे, उनके लिए सीट नहीं। इस तरह १० मिनट के बाद गाड़ी ने उद्दिष्ट मार्ग पर द्रुत गति से चलना आरंभ किया।

सेकण्ड-क्लास के एक-एक कमरे में ८ से ज्यादा सीटें नहीं थीं। सीटें थोड़ी सहूलियत वाली आराम-कुर्सी की तरह होती हैं। सेकण्ड और फर्स्ट क्लास के डब्बों के अंदर मखमल लगा रहता है और कुर्सीनुमा मखमल भी होता है। पर डब्बों में सामान रखने की बहुत कम जगह होती है। छोटे से सूट-केस या अटेची के सिवा अंदर डब्बे में कोई सामान नहीं आ सकता। ज्यादा सामान हो तो 'लगेज' में ही सिपुर्द करना पड़ता है। डब्बे भी छोटे रहते हैं। कमरे के बाहर एक दालान रहता है, जहाँ लोग फिरते रहें तो बैठनेवालों का हर्ज नहीं होने पाता। इस तरह सारी ट्रेन में आप दालान के जरिये घूम सकते हैं। एक डब्बे से दूसरे का कनेक्शन रहता है। पर हमारी यात्रा टेढ़ी थी। यात्री सारी गाड़ी में—दालानों में—बुरी तरह फँसे हुए थे। टिकट होते हुए भी वे खड़े-खड़े सफर कर रहे थे। हाँ, वे भारत की गाड़ी के प्रवासी की तरह आपस में लड़ने पर उतारू नहीं होते कि 'तूने भी पैसे दिये हैं, और मैं मुफ्त में नहीं आया हूँ;' 'सीधा बैठ' आदि। वे चुपचाप रात के नीरव पथ पर द्रुत गति से तारक-मालिका निहारते चले जा रहे थे। उन खड़े रहनेवालों के पैरों की हालत उनका मन ही अनुभव कर रहा होगा। यह 'सेकेण्ड क्लास' का हाल था। हमारे पैर सिकुड़ कर फँसे हुए थे, कुर्सी से बाहर हमारा कोई अधिकार नहीं था। फिर रास्ता भी घिरा हुआ, बाहर जाने-आने के लिए पूरे व्यायाम की जरूरत, एक-दूसरे की शांति भंग होने का भय। पैर सुन्न हो रहे थे।

जिनेवा का राष्ट्र संघ (लीग ऑफ नेशन्स) भवन (पृ० ६८)

११

जिनेवा में

ठीक १० घण्टे बाद हम एक विशाल स्टेशन पर पहुँचे।

यह हमारा परिचित 'जिनेवा' है, जहाँ अनेक भारतीय वाग्वीर भारत-सरकार द्वारा मेम्बरी की प्रतिष्ठा पा प्रतिवर्ष आया करते हैं। बेचारा 'नीगस' (सम्राट सिलासी, एबिसीनियन सम्राट) इसी नगर की गूढ़ पहेली—लीग आफ नेशन्स—की उलझन में पड़, अपना अस्तित्व शेष रख, सर्वस्व गवाँ बैठा है। यहीं नामावशेष लीग की लकीर पीटी जाती है, जिसकी जान पहले ही जा चुकी है। चतुर खिलाड़ियों का यहीं राजनीतिक खेल होता रहता है, जिसमें भूला-भटका अब भी फँसकर अपना दाँव लगा सब कुछ खो बैठता है। भारतीय मजदूर-समस्या का भी तो यहीं 'हल' खोजा जाता है। और, इस बार तो लीग का वह खेल विख्यात घुड़दौड़वाले चतुर खिलाड़ी हिज हाइनेस आगाखाँ के जिम्मे आया है। जिनेवा की सुन्दर सड़कों पर, 'लीग' के भव्य भवन के प्रांगण में, वे अपने 'रेस' के घोड़ों को खूब दौड़ा सकेंगे।

हाँ, तो कहने का मतलब यह है कि हम इसी सुपरिचित स्थान जिनेवा में आ गए थे। अनेक विचार हमारे सर में जिनेवा के नाम के साथ ही चक्कर काटने लगे। नीगस की ताजी घटना हमारे सामने थी। वह यहीं-कहीं धूनी रमाए बैठा था। 'लीग' के भवन के मार्ग पर ही उसका कहीं स्थान है।

जिनेवा को कई दृष्टियोंसे ऐतिहासिक महत्त्व भी प्राप्त है। आसपास शक्तिशाली राष्ट्रों के होने के कारण जिनेवा को अपनी स्वाधीनता अक्षुण्ण बनाए रखने को सर्वदा सतर्क, सावधान और सशक्त रहना पड़ा है।

अरमानों का पुन जागरण हुआ। अब रेल अपनी निरंतर गति से भू भाग को तय करती हुई प्रगति-पथ पर अग्रसर होती जा रही थी। आस पास के वृक्ष लताओं की दौड़धूप जारी थी। वे एक-दूसरे से होड लगा रहे थे। दोनों ओर खेतों की हरियाली, अगूर की लताएँ, मनहर पर्वत-मालिकाएँ, वनराजी, मन को बहुत आकर्षित कर रही थीं। अतृप्त नयनों से इस शोभा को निहारता हुआ रात की चिन्ता को भुलाता जा रहा था। मार्ग के छोटे-छोटे ग्रामों की रचना बहुत भली मालूम हो रही थी। ग्रामों के भवन रग बिरंगे, किन्तु साथ ही अपनी अभिनवता लिये, सहज दृष्टि को आकर्षित किये बिना नहीं रहते थे। द्वारों पर, खेतों पर, भवनों की गैलरियों या वायुवाहिनियों पर, विविध रंगों के कुसुमों की लताएँ, गमले आदि यूरोपीय ग्रामीणों की सुरुचि और कला प्रवीणता का प्रदर्शन करते हुए हृदय पर एक हल्की-सी मोहक मुद्रा अंकित करते जाते थे।

गाडी की गति को इससे क्या? वह निर्लिप्तभावेन बढ़ी जा रही थी। उसका तो यह दैनिक क्रम ही ठहरा! कहीं भीषणाकार दीर्घ बोगदों (गुफाओं) में घुसकर तिमिरावरण पहन, क्षणभर रवि-किरणों से लुकाछिपी करती और फिर एकदम सुनहरी रश्मि-माला का अंबर परिधान कर चकाचौंध करती, चली जाती थी। कभी पर्वतों का गर्व चूर्ण करने को उनके समुन्नत शिखर पर चढ वायुवेग से भागने लगती तो कभी नागिन की तरह बल खाती पर्वत-मेखला पर लिपटती चलती। इस तरह उस कुसुमित हरित शोभामयी भूमि की प्रदक्षिणा करती, ऊपर-नीचे होती हुई, प्रकृति की मनोहारी शोभा के दर्शन कराती, वह गाडी ९ बजे एक विशाल स्टेशन पर जा ठहरी।

कडा दिल कर एक बार मैंने वाहर जाने की ठानी। गाडी अबाध गति से चली जा रही थी। कुछ ऊँघ रहे थे, कुछ वेचारे अपने शरीर को जरा भी विश्राति न दे सके थे। वे म्लानवदन नतमुख हो काँच के सहारे खिड़की के पास लगे हुए थे। मैं बहुत सावधानी से अपने कमरे से बाहर निकला और W. C. की तरफ चला। अभी इस २५—३० फुट की जगह को पार करना था। बहुत ही कठिनता से मैं शायद उतने ही मिनटों में वहाँ पहुँचा, जितनी फुट जगह पार करनी थी। रास्ते में वे खड़े हुए प्रवासी अपना सामान भी रखे हुए थे। फिर उसी तरह वापस अपने कमरे तक राम राम कर लौटा। मुझे भ्रम हो जाता कि मैं भारत मे भ्रमण कर रहा हूँ, या सुधरे हुए यूरोप में ?

ज्यों-त्यों करके रात बिताई, निद्रा न मिलने से कष्ट था ही। सारा शरीर विश्रांति के अभाव मे जकडे रहने के कारण दर्द कर रहा था। मैंने सोने के लिए 'स्लीपिंग कार' का टिकट चाहा था। रेलवे में यह एक अलग ही डब्बा जुडा रहता है, जिसमें सोने की जगह होती है। उसका किराया एक पौंड (१३ रुपया) अलग देना पडता है। उस रोज वह पहले ही रिजर्व हो गया था, जगह बाकी नहीं थी, इस कारण हमारी यह यात्रा सुखपूर्वक नहीं हुई। यूरोपीय रेलवे के थर्ड क्लास की भी हालत कोई ज्यादा उम्दा नहीं है। वेञ्च भारतीय ढग की निरी लकड़ी की सीट वाली है। हाँ, उन बेंचों पर सेकण्ड-फर्स्ट क्लास की तरह एक-एक सीट के स्थल-विभाजन नहीं हैं, वहाँ वही काठ की बेंच सीधी-सी है। हमारे देश की रेलों में रात के वक्त अगर यात्री न हो तो सेकण्ड में सोने की सहूलियत मिल जाती है, पर यहाँ कोई यात्री न हो तो भी सेकण्ड-फर्स्ट मे आप सो नहीं सकते, आराम नहीं रहता।

रात के बाद यूरोप का दूसरा स्वर्ण विहान हुआ। अरुण की रक्तिमा नभ मण्डल पर फैलने लगी। तारागण झिल-मिल हो एक-एक कर विलीन होता जा रहा था। धीरे-धीरे प्रकाश फैला, रजवराका को विदा मिली। सुनहरे प्रात काल के दर्शन से मन के

अरमानों का पुनः जागरण हुआ। अब रेल अपनी निरंतर गति से भू-भाग को तय करती हुई प्रगति-पथ पर अग्रसर होती जा रही थी। आस-पास के वृक्ष-लताओं की दौड़धूप जारी थी। वे एक-दूसरे से होड़ लगा रहे थे। दोनों ओर खेतों की हरियाली, अंगूर की लताएँ, मनहर पर्वत-मालिकाएँ, वनराजी, मन को बहुत आकर्षित कर रही थीं। अतृप्त नयनों से इस शोभा को निहारता हुआ रात की चिन्ता को भुलाता जा रहा था। मार्ग के छोटे-छोटे ग्रामों की रचना बहुत भली मालूम हो रही थी। ग्रामों के भवन रंग-बिरंगे, किन्तु साथ ही अपनी अभिनवता लिये, सहज दृष्टि को आकर्षित किये बिना नहीं रहते थे। द्वारों पर, खेतों पर, भवनों की गैलरियों या वायुवाहिनियों पर, विविध रंगों के कुसुमों की लताएँ, गमले आदि यूरोपीय ग्रामीणों की सुरुचि और कला-प्रवीणता का प्रदर्शन करते हुए हृदय पर एक हल्की-सी मोहक मुद्रा अंकित करते जाते थे।

गाड़ी की गति को इससे क्या? वह निर्लिप्तभावेन बढ़ी जा रही थी। उसका तो यह दैनिक क्रम ही ठहरा! कहीं भीषणाकार दीर्घ बोगदों (गुफाओं) में घुसकर तिमिरावरण पहन, क्षणभर रवि-किरणों से लुकाछिपी करती और फिर एकदम सुनहरी रश्मि-माला का अंबर परिधान कर चकाचौंध करती, चली जाती थी। कभी पर्वतों का गर्व चूर्ण करने को उनके समुन्नत शिखर पर चढ़ वायुवेग से भागने लगती तो कभी नागिन की तरह बल खाती पर्वत-मेखला पर लिपटती चलती। इस तरह उस कुसुमित हरित शोभामयी भूमि की प्रदक्षिणा करती, ऊपर-नीचे होती हुई, प्रकृति की मनोहारी शोभा के दर्शन कराती, वह गाड़ी ९ बजे एक विशाल स्टेशन पर जा ठहरी!

कृति का प्रिय प्रदेश जिनेवा !! पृ० ६१)

५८ बी० सी० में जूलियस्-सीजर की अधीनता स्वीकृत कर रोमन-साम्राज्यान्तर्गत रहना पड़ा हो, या बर्गंडियन अथवा जर्मनी के साथ संयुक्त बनना पड़ा हो; परंतु जिनेवा के जीवन में स्वाधीनता की 'स्पिरिट' सर्वदा जीवित बनी रही है, यही कारण इसके अस्तित्व का है। धार्मिक दृष्टि से भी जब तक प्रोटेस्टंट-सम्प्रदाय को स्वीकार नहीं किया, तब तक जिनेवा में कैथोलिकों का यहाँ केन्द्र बना रहा है। जिनेवा में वह विजयोत्सव तो प्रतिवर्ष मनाया जाता है, जो सेव्हॉय के ड्यूक को हराकर इसने यश के साथ प्राप्त किया है।

१८वीं सदी के अंतिम संघर्ष-काल मे घरेलू झगड़ों में पड़कर जिनेवा को फ्रेंच प्रजासत्ता में सम्मिलित हो जाना पड़ा था। किन्तु अधिक समय तक यह पराधीनता नहीं रही। १५ साल के अनंतर ही पुनः अपनी खोई हुई स्वतंत्रता प्राप्त हो गई और १८१० में उसको पूर्ण स्थायित्व भी मिल गया। उसी समय से स्वीस् की २२वीं छावनी के नाम से जिनेवा माना गया है।

जिनेवा में १८वीं सदी मे अनेक प्रतिभासम्पन्न मानवों का उत्पन्न होना एक महत्त्वपूर्ण घटना है, जो इस नगर की ख्याति-महत्ती बढ़ाने में विशेष कारणभूत हो गई है। इस सदी के साहित्य, कला, उद्योग आदि की प्रगति ही इसके प्रमाण हैं। फिर १९२० में 'लीग' की स्थापना जिनेवा की महत्ता को ऊपर ले जानेवाली हुई है। ऐसे ही अनेक प्रकार से जिनेवा का स्विट्झरलैंड में स्वतंत्र स्थान है।

राजनीतिक दाव-पेंच की इस सुप्रसिद्ध भूमि पर उतरकर हमने स्टेशन पर ही कुली के सिपुर्द अपना सामान किया। ब्रेक-फॉस्ट लेने का निश्चय कर स्टेशन से एक मंजिल नीचे उतरे। पहले फर्स्ट क्लास के होटल मे चाय-पान किया। फल खाने के अनन्तर नगर-निरीक्षणार्थ निकल पड़े। जिनेवा 'स्विट्झरलैंड' का एक छोटा-सा, किन्तु निर्मलसलिलवाहिनी 'रोन' नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ, मनोहारी ग्राम है। यह रोन-नदी इस ऑल्प्स-पर्वतमाला-वेष्टित झील में आकर गिरी हुई है। समस्त स्वीस ही
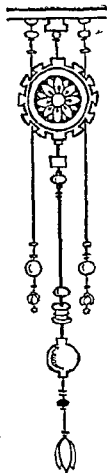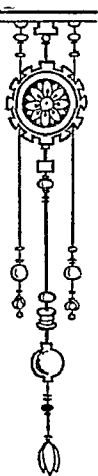
प्रकृति-सौन्दर्य की दृष्टि से खास महत्त्व रखता है। उसके किसी भी गाँव या नगर में चले जाइए; वह एक अपनी विशेषता अवश्य रखता होगा। जिनेवा भी छोटा-सा ग्राम ही है। पर छोटा होते हुए भी यह बहुत आकर्षक रूप में बसा हुआ है। नगर के मध्य में सुन्दर सरिता है। उसके चारों ओर तट पर नगर की सीधी-सादी किन्तु भव्य अट्टालिकाएँ विराजमान हैं। उस 'सर' के मध्य में एक बड़ा ऊँचा फव्वारा है जो ढाई फुट मोटे पाइप से पानी लेकर ३०० फीट ऊपर पानी फेंककर जनता के लिए कौतुक किया करता है। रवि-किरणों से कण-कण में रंग भरकर वह 'सर' शोभा का निकेतन बन जाता है। नयन वहाँ से हटना नहीं चाहते। प्राचीन कलाओं से पूर्ण अनेक सुन्दर भवन बने हुए हैं, जो देखते ही बनते हैं।

'सर' के तट पर खड़े हो जाइए तो सामने ही आल्प्स की हिमाच्छादित पर्वत-मालिका हरिताम्बरपरिधानमय सुंदर दृश्य उपस्थित करती हैं। वृक्षावली के बीच-बीच में सुन्दर और विशाल इमारतें दिखाई देती हैं। पर्वत-मालिका के पास ही से 'रोसेओं' नामक स्थान, जो 'सर' के निकट पुल के पास ही है, बहुत आकर्षक विदित होता है। 'पोण्ट द मौण्ट-ब्लॉक' की पुलिया पर खड़े होते ही नौकाओं का विहार, 'सर' में उनकी दौड़धूप और नगर की चहल-पहल भी देखने की वस्तु है। इस नगर के मध्यवर्ती झील की निर्मलता तो शुद्ध स्फटिक की तरह है। बहुत गहरे में पड़ी हुई चीज भी आँखों से देखी जा सकती है। डाक्टरों ने भी इसके पानी को सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण देकर उसकी उपयोगिता बढ़ा दी है।

'मानोमेण्ट प्रांसविक' की विशाल अट्टालिका, वहाँ का सुसज्जित रम्य उद्यान और निकट की भवन-पंक्ति अतृप्त नयनों से देखते जाइए—जी न भरेगा।

इस स्मारक-भवन के बाहर ही कलामयी मूर्तियाँ मौन भाव से खड़ी दर्शकों को आकर्षित करती रहती हैं। जिनेवा की अन्तर्राष्ट्रीय लायब्रेरी और 'मानोमेण्ट-इण्टर्नेशनल लॉ-रिफार्मेशन'
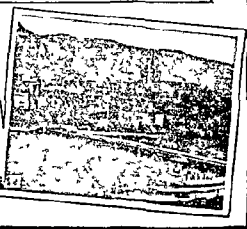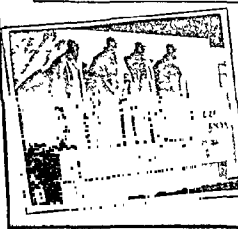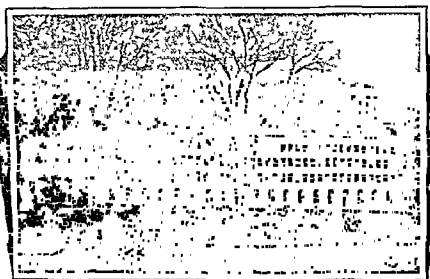
(१) राष्ट्रसंघ का विस्तीर्ण भव्य प्रासाद (२) जिनेवा का ज्ञानकेन्द्र कालेज (३) अंतरराष्ट्रीय सुधारक स्मारक एवं म्यूजियम, दर्शनिक 'रूसो' का स्मृतिभवन (४) पर्वत के अंचल में, तथा निर्मल सलिला, झील के तट पर—जिनेवा, उन्नत शिखरवाला भवन सुप्रसिद्ध सेंटपेटर्स चर्च का है।
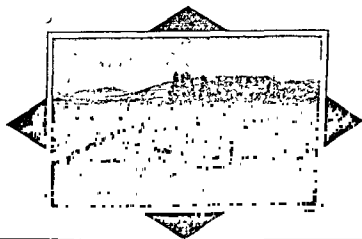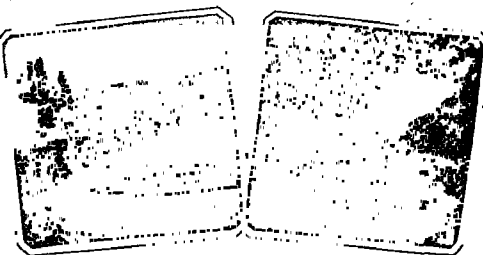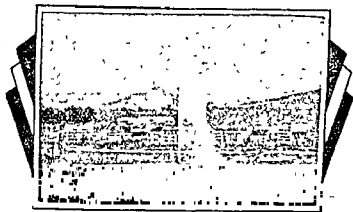
(१) झील का मध्यवर्ती फव्वारा, जो २४० फीट ऊपर उठता है (२) विमल-सलिला जिनेवा-झील (३) प्रकृति के रम्य उद्यान में (४) माउण्ट-ब्लैंक ब्रिज एवं जग-विश्रुत दार्शनिक 'रूसो' का स्मारक (पृष्ठ ६८—७१)

की सुन्दर इमारत भी दर्शनीय है। यह ईसाइयों के अंतरराष्ट्रीय सुधार की स्मृति में स्थापित है। आगे 'कजीनो' अजायब-घर, और विश्वविदित 'रूसो' (दार्शनिक) का संग्रह तथा प्राचीनावास दर्शनीय वस्तु हैं। हेम-मण्डित रशियन चर्च भी इस नगर की कलापूर्ण कृति है।

विल्सन-पॉर्क और प्रेसिडेंट-विल्सन-रोड जिनेवा की सबसे सुंदर रमणीय जगह है। यहाँ शाम को सैलानियों के लिए बड़ी सुन्दरता से बनाया हुआ नगर का शानदार कलायुक्त उद्यान है। इस तरह चारों ओर हरियाली और नयन-रंजक सुंदर भवनों तथा कला-पूर्ण उद्यानों से परिपूर्ण जिनेवा नगरी है। यहाँ से टैक्सी द्वारा लीग-भवन को देखने जाया जाता है। यह स्थान शहर से दूरी पर है। परन्तु सारा रास्ता इतना शोभा-युक्त है कि मन और आगे बढ़ने को चाहेगा। जहाँ तक दृष्टि जाती है, साफ-सुथरी सड़कें, कतारों में खड़े वृक्ष और हरित भूमि यात्री का स्वागत करती चली जाती है। प्रकृति के इस मधुर आतिथ्य को स्वीकार करता हुआ प्रवासी उल्लसित मन से बढ़ता जाता है। रास्ते में अनेक उद्यानों से सजे हुए भवन दिखाई पड़ते हैं। बाद हमें मालूम हुआ, कई आगत प्रतिष्ठित सदस्य इनमें आकर रहा करते हैं। सभी देशों के लोग यहाँ दिखाई देते रहते हैं।

कुछ दूर चलकर हमें एक छोटा-सा किंतु अभिनव कलायुक्त 'व्हिला' मिला। ड्राइवर ने बतलाया कि वही 'रास तफारी' (एबिसीनिया के सम्राट्) के ठहरने का स्थान है। कुछ दूर चलते ही लीग के महान् भवन के दर्शन होने लगे। यह बहुत बड़ी विस्तृत भूमि पर निर्मित शानदार इमारत है, जो अनेक विभागों में विभक्त होकर अनेक राष्ट्रों के उत्थान-पतन की आह-कराह अपने अन्तर में छुपाए हुए मस्तक उठाए खड़ी है। आज यह बंद थी। इसके अंतःप्रदेश के दर्शन होना हमारे भाग्य में बदा नहीं था। परन्तु इसका बाह्य रूप भी कम शानदार और कम प्रभावोत्पादक नहीं था। प्रकृति ने अपना लावण्य भी इस
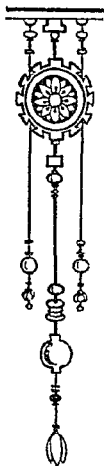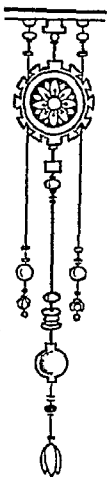
भूमि को प्रदान किया है। मनोहर उद्यान, भव्य भवन, शाही शोभा-वैभव से सुसज्जित 'लीग' की आवासभूमि अंतर-राष्ट्रीय महत्ता का तीर्थस्थान है। यहाँ यदि अनेक श्रद्धालुओं ने विश्वासपूर्वक श्रद्धा के दो फूल अर्पित किए हैं, तो नीगर्स-जैसों ने आत्मसमर्पण कर अश्रु सिंचन भी किया है। और, मुसोलिनी ने ? उसने तो उपेक्षा की निगाह से देखा है।

जिनेवा राजनीति की मन्त्रणा-भूमि है। यहाँ एक-दो भारतीय सज्जनों के भी निकटवर्ती भव्य प्रासादवाले लेबर-ऑफिस में दर्शन हुए। नगर में घूमते हुए एक-दो मदरासी साफों में सज्जित किसी चारियर, चेट्टियर के भी दर्शन हो गए। यहाँ पुरुषों और स्त्रियों में सादगी ज्यादा दिखाई दी। जिनेवा की जनसंख्या १३५००० है। यहाँ के विश्वविद्यालय को अंतर-राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। जिनेवा में छत्रिमता का अभाव-सा था। इस छोटे-से नगर में भी मानवता का सृजन करनेवाली अनेक संस्थाएँ और वाचनालय, स्कूल तथा म्यूजियम हैं, संस्कृति का केन्द्रस्थान ही कहना चाहिए। साइंस, इंडस्ट्री, ऑर्ट आदि की शिक्षणसंस्थाएँ प्राइवेट तथा सरकारी भी अनेक हैं। घड़ी और जवाहरात के लिए भी इस स्थान की बड़ी ख्याति है। फिलासफर रूसो का म्यूजियम, रॉथ म्यूजियम, रिफॉर्मेशन म्यूजियम, नेचरल हिस्ट्री म्यूजियम आदि ऐतिहासिक महत्वपूर्ण स्थानों का जिनेवा में खास स्थान है। और, हिस्ट्री-ऑर्ट-म्यूजियम में जूलियस-सीजर से लेकर आधुनिक काल तक का महत्वपूर्ण दर्शनीय साहित्य संगृहीत है।

होटल और घड़ियों का ही यहाँ ज्यादा व्यवसाय दिखाई दिया। मक्खन आदि यहाँ बहुत प्राप्त होता है। शहर में होटल-ही-होटल भरे पड़े हैं, होटलों के बाद दूसरा नम्बर उद्यानों का है। जिनेवा का अंतरराष्ट्रीय महत्त्व होने के कारण ही, इस व्यवसाय विहीन ग्राम में, विविध राष्ट्रों की जनता का, वैभव-मंडित प्रासाद और कुसुम-कलेवर-रंजित उद्यान, रोज स्वागत करते रहते हैं। कैसा सुन्दर स्थान है यह !
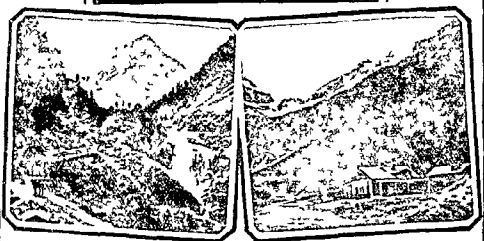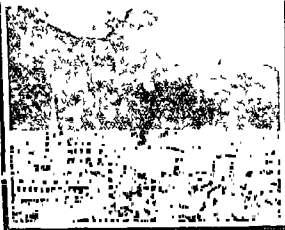
(१) ग्यारह हजार फीट उन्नत हिमाच्छादित सौध शिखर। (२) मनोहारिणी-वनराजी, हिम मण्डित पर्वतमाला और निर्मल निर्झर (३) विपुल हिमराशि से सद्यस्नात सौधोत्संग, स्केटिंग की क्रीडाभूमि, (४) नगाधिराज के एकांत अंचल में, प्रकृति निकुंज में, 'मनावास'।

(पृष्ठ ७५—७८)

जिनेवा का वॉचमेकर (पृ० ७३)

नगर की प्रदक्षिणा कर, विहंगावलोकन कर, हम फिर स्टेशन पर वापस आ गए। कुली महाशय हमारा सामान सम्हाले विराजमान थे। उनको इनाम दे ११॥ बजे की ट्रेन पर सवार हो हमने जिनेवा से विदा ली!
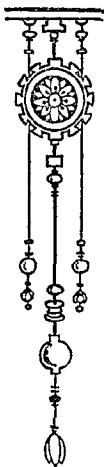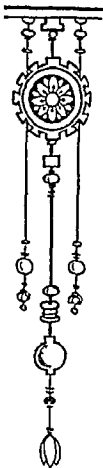
१३
'जिनेवा' से 'ज़्यूरिक'

दोपहर का समय था। ट्रेन अपनी पूरी ताकत से स्विट्जरलैंड की स्वर्ग-भूमि पर भागी जा रही थी। कभी पहाड़ियों को चीरती हुई, कभी पर्वत शिखर पर सरपट भागती हुई और कहीं गिरि-कन्दराओं मे लुका-छुपी करती हुई, एक अजीब दृश्य उपस्थित करती रेल चली ही जा रही थी। जहाँ तक दृष्टि की पहुँच थी, हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ रही थी। मैं अतृप्त नयनों से इस शोभा को देखता हुआ, अपनी आत्म-विस्मृति मे उस रेल के वेग के साथ मनोवेग को संयुक्त किए, चला जा रहा था।

न जाने कब तक भूला रहा कि अपने देश में हूँ, अथवा हजारों मील दूरी पर चला जा रहा हूँ। प्रकृति-सुन्दरी के उन्मादपूर्ण लावण्य को इस तन्मयता से देख रहा था कि भूख-प्यास भी भूल गया था। मेरे साथी ने जब स्मरण दिलाया कि 'लंच का समय हो गया है, चलिए कुछ ले लिया जाय' तब घड़ी पर मेरी निगाह गई। उठकर उनके पीछे हो लिया। ट्रेन के रेस्टॉरेंट वाले विभाग मे जा पेट को थोड़ा किराया दिया, और पुनः अपनी सीट पर आ बैठा।

यह सारा भू-भाग स्विट्जरलैंड का ही था। छोटे-बड़े स्टेशन आ-जा रहे थे। सारे मार्ग मे खेत, किसानों की सुन्दर कोठियाँ और छोटे-छोटे ग्राम चले जा रहे थे। गाड़ी सहज ही इन्हें पीछे छोड़ती हुई भाग रही थी। दोनों ओर कई मील तक शस्य श्यामल भूमि पर लकड़ी या पत्थर के चीरों के चौकोने मंडप पर चढी हुई अगूर की बेलें ही-बेलें दिखाई पड़ रही थीं। कहीं लाल, कहीं हरे रंग और कहीं श्यामल वर्ण के अंगूर मधुमक्खियों के छत्ते की तरह लटकते हुए उन

हरित वहरियों में बड़ी ही शोभा दे रहे थे। कई मील तक अगूर के लटकते हुए गुच्छे दोनों ओर आँखों पर मादकता से टकराते हुए चले जा रहे थे। बीच मे किसानों के मकान, जिन्हें मैंने ऊपर कोठियों के नाम से सबोधित किया है, ऐसे सुन्दर और वृक्ष-लता-मण्डप से शोभित दिखाई देते थे कि भारत के अनेक बड़े-बड़े रईसों के वैसे निवास-स्थान न होंगे। हरएक अपनी निराली शोभा लिये हुए होते थे। कोई सीधा-सादा और एक-मंजिल भी होता था तो उसमे भी आकर्षित करने के सभी साधन जुटे हुए मालूम होते। दो मंजिले और तिमंजिले मकान भी किसी रईस की कोठी से कम शानदार नहीं थे। इन सब विविध वर्णों वाले भवनों के सामने कला-पूर्ण उद्यान, रग-बिरंगे पुष्प और विविध दिशाओं मे लताएँ लिपटी हुई अवश्य होती थीं। अनेक वर्णों के सुन्दर सजे हुए गमले झरोखों से, गैलरियों से और खिडकियों से दर्शकों की आँखों पर जादू फेंका करते थे। कहीं अपने उन्नत मस्तक से गर्व करते हुए गिरजे ग्राम की सतह से ऊपर उठे हुए दर्शन देते। कहीं ग्राम-के-ग्राम एक सुन्दर शहर की तरह साफ-सुथरे उद्यानों से हरे-भरे और 'कोल-टार' रोड़ से निगाह को फिसलाते जा रहे थे। ये भला ग्राम कैसे कहे जायँ? यहाँ नगर की सभी सुविधाएँ तो सुलभ हैं। जल की निर्मलता, ग्राम की सुन्दरता, रचना-सौष्ठव, सडक की उत्तमता! सौ मकान वाला ग्राम ही क्यों न हो, वह भी भव्यता और विविध कलाओं से निर्मित! तार, टेलीफोन, मोटर, रेडियो, वायरलेस, टेलीग्राफ के स्तम्भों से आवृत, विद्युत्-प्रकाश से चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला! इन ग्रामों मे और नगरों मे क्या अतर हो सकता है?

यहाँ के ग्रामीण किसान फटेहाल नहीं दिखाई दे रहे थे। गाड़ी की भाग-दौड़ मे भी उन भवनों में से क्षणिक झाँकी करा देनेवाले स्त्री-पुरुष और खेत पर काम करनेवाले कृषक, सभी एक-से ही साफ-सुथरे, वर्त्तमान सभ्यता से संयुक्त मालूम होते
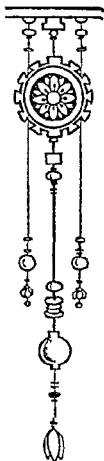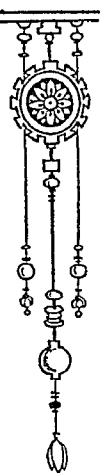
थे। छोटी-सी खेती लिये, खेत पर घोड़ों का हल चलाता हुआ, किसान भी यदि काम से निपट कर अपनी कार या मोटर-साइकल से बाहर जाता हुआ दिखाई दे जाय तो वह साहब बहादुर ही है! गले में 'टाय' लटक रही है और खेत पर साहब बहादुर अपनी मेम साहबा के साथ हल चला रहे हैं! मेम साहबा भी हट्टी कट्टी, गुलाब के फूल की तरह नजाकत रखने वाली होते हुए भी, खेत पर फ्रॉक पहने घास काटती दिखाई पड़ती हैं!

खेतिहरों का जीवन भी आज एक निगाह में मुझे बड़ा आनन्ददायक ही जँचा। उनके उस छोटे-से सुघर सज्जित 'व्हिला' पर रहने में कोई रईस भी अपनी शान समझेगा। मुझे तो आज की इस रेल-यात्रा में कहीं खेतों के झोपड़े, गरीब, फटेहाल किसान या नंगे भूखे दुबले मानव, मैले-कुचैले ग्राम, खेत या मकान, सड़कें दिखाई न दीं। इनके सौभाग्य पर मुझे ईर्ष्या होने लगी और इनके पुण्य तथा कर्मण्यता पर आदर भी!! कैसा यह हरा-भरा, मोहक, साधन-संपन्न, प्रकृति का लीला-निकेतन देश है! रास्ते भर अनेक जलाशय, झरने, नदी, तालाब और नहरें मिलती जा रही थीं। कहीं भी कीचड़ या मैलापन नहीं था। सभी तो निर्मल, स्वच्छ और हरियाली से शोभित थे। आसपास सड़कों का जाल-सा बिछा है। सैकड़ों मील तक पुख्ता, चिकनी, साफ सुथरी सड़कें चली जा रही थीं। कभी-कभी इन सड़कों पर इधर से जाती हुई या उधर से आती हुई मोटरें ट्रेन से होड़ करती हुई भागी जाती थीं। उनमें बैठे हुए स्त्री-पुरुष रेल-प्रवासियों के स्वागत में रूमाल हिलाते, आनन्दमयी स्मित मुद्रा से इठलाते, चले जाते। पर सड़क पर कहीं रजकण उड़ती नहीं मालूम होती!

और वे खेत? जहाँ चारा काटा जाता है, ऊँचे-नीचे, टेढ़े-मेढ़े होते हुए भी, ऐसे आकर्षक मालूम होते हैं कि चित्र-लिखित-सा रह जाना पड़ता है। खेत लगाना और खेत काटना भी यहाँ के लोगों का कला से खाली नहीं है, मानों इनके जीवन में

'कला' ओतप्रोत हो गई है। साधारण कृषक, अपने खेत से घास काटकर भी, उस खेत को सूखा-रूखा न बना देगा। एक लम्बे बाँस पर बड़ा-सा खुर्पा लगा रहता है। उसके छोर पर एक रस्सी बँधी होती है। उसे पकड़कर इशारे से खेत पर कृषक चलता है और वह घास को काटकर वहीं बिछा देता है। जमीन नग्न नहीं होती, उसका कलेवर हरित वर्ण का वस्त्र परिधान किए रहता है। पहाड़ियों से लेकर नीचे तक एक-सरीखा घास कटती है, और वहाँ गलीचा-सा बिछा रहता है।

खेत लगाने के तर्ज पर भी निगाह दौड़ाइए! जरा देखिए इसमें भी इन किसानों की कारीगरी को! मान लीजिए, एक छोटी-सी टेकरी है। उसके चारों ओर अलग-अलग लोगों ने हिस्से बनाकर अपना-अपना खेत मान लिया है। उन्होंने अपने-अपने हिस्से की भूमि को लकड़ी के कठड़ों से विभक्त कर दिया है। और, कहीं-कहीं तो भाग्यवश झरनों की निरंतर-प्रवाहिनी झर-झर ने खण्ड कर दो भाग सूचित कर दिएहैं। उन पर खेत बो दिया गया है। खेत का भूभाग उन्होंने उसी अन्दाज से, चौकोना या तिकोना, जैसा सुन्दर दिखाई दे, बना लिया। आरंभ में एक लाल रंग की भाजी लगा दी है, जो चारों ओर एक वर्ण की रेखा खींच रही है। उसके अंदर एक लाइन फिर दूसरे रंग की भाजी बो दी है, फिर एक मगजी उसके अंदर उसी लाल भाजी की लगा दी। बीच में जैसी भाजी, या जो भी धान्य लगाना हुआ, ठीक इन किनारियों के मध्य में बो दिया, और धान्य के बीचोबीच तथा चारों कोनों पर कुछ सुन्दर गुच्छे वाले फूल के पेड़ खड़े कर दिए। इस तरह सारी हरित-वर्णमयी पहाड़ी पर रंग-बिरंगी खेती कैसे आकर्षक कलापूर्ण गलीचे की तरह मालूम देगी! देखने वाला घण्टों तक उस शोभा को निरखता रहे—अघाएगा नहीं। वह इन ग्रामीणों की कलाप्रियता की दाद दिए बिना न रहेगा।

ये कृषक भी कितने प्रकृति के प्रेमी समरस हो जाते हैं। कैसा इनका जीवन है! क्यों न ये स्वस्थ, पुष्ट, सभ्य, कलामय
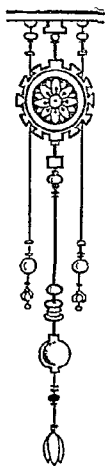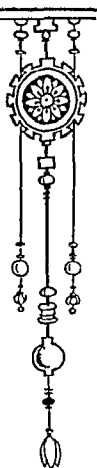
हाँ ? गाड़ी से प्रवास-यात्रा करनेवाला यात्री भी, निमिष-मात्र में इनकी कृषिकला की झाँकी करता हुआ, आनन्द-विभोर हो, सुखमय प्रवास करेगा। फिर यह तो यूरोप का 'स्वर्ग' स्विट्जरलैण्ड ही है, इसकी शोभा का सहस्र मुख से वर्णन करके भी अपूर्ण ही मानना होगा।

कई स्टेशनों पर गाड़ी रुकी और फिर भागती गई। मैं भूख-प्यास और सुधि भूला-सा एकटक इस प्रकृति-सुन्दर अमर भूमि की शोभा का पान करता हुआ, साधारण कृषकों की कलामय सजावट को देखता हुआ, शाम के ४॥ बजे स्विट्जरलैण्ड के एक प्रसिद्ध तथा भव्य नगर 'झूरिक' के स्टेशन पर आ पहुँचा।

१४
ज़्यूरिक से ऑस्ट्रिया

शाम के ४॥ बजे—गाड़ी 'ज़्यूरिक' के भव्य स्टेशन पर आकर रुक गई। यद्यपि हमें ऑस्ट्रिया जाना था, तथापि हम रात का जागरण कर ट्रेन का कष्ट उठाना नहीं चाहते थे। इसलिए हमने रात 'ज़्यूरिक' में बिताकर प्रातःकाल आगे बढ़ने का निश्चय किया। गाड़ी से उतरते ही 'थॉमस कुक' का एजेंट स्टेशन पर तैयार मिला। उसकी सलाह से स्टेशन के निकट ही एक होटल में ठहर गये। यहाँ के होटल बड़े सजे हुए, राज-प्रासादों की तरह हैं। ज़्यूरिक यद्यपि स्विट्ज़रलैण्ड की राजधानी का नगर नहीं है, तथापि सारे 'स्वीस' में इससे बड़ा दूसरा नगर भी नहीं है। इस कारण यहाँ चहल-पहल खूब है। व्यापार-व्यवसाय भी खूब है और नगर की शोभा भी अपूर्व ही है। होटल में अपना सामान रख, चाय की आराधना से छुट्टी पा, हम नगर में एक चक्कर लगाने निकल पड़े। कुछ दूर ही झील के किनारे हो आगे बढ़ रहे थे कि प्रकृति ने अपना शुभ्र अंचल फैलाकर चमकता-सा चेहरा छुपा लिया, और मोती की तरह आँसू टपकाने लगी। हमारे पैर भी गतिहीन हो गए—न आगे बढ़ते थे न पीछे ही हटते थे; क्षण भर इस तरह हम प्रकृति के साथ सहानुभूति दिखलाते हुए रुके रहे। अब धीरे-धीरे फिर उसने अंचल उठाया। उसका म्लान वदन पुनः चमक उठा। आभा से नगरी और समस्त प्रकृति आलोकित हो उठी। सड़कों पर वही हलचल चहल-पहल शुरू हो गई। प्रकृति की कोमलता और सुकुमारता से हम जरा चौंक गए थे। कब, न जाने कैसे, यह भावावेग में आ रस-फुहिया बरसाने लगी! मध्य मार्ग में ही हमारी गति अवरुद्ध न हो जाय, इसलिए हमने अपने
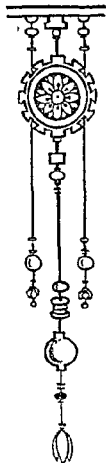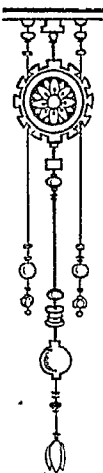
पैरों से चलना छोड़, चार पैरों पर चढ़कर, (कार-द्वारा) जाना उचित समझा।

मोटर द्वारा शहर का सभी प्रमुख भाग घूम-फिर कर देखा। बाजार खूब सजा हुआ है। बंबई की तरह विशाल भवनों और दूकानों का यह हरा-भरा नगर है। बीच में झील का निर्मल जल, सामने की हिममंडित पर्वतमालिका और रवि-किरणावली बड़ा ही सुहावना दृश्य उपस्थित कर रही है। शाम के समय सैकड़ों स्त्री-पुरुष इस सुन्दर झील में नौकाविहार करते रहते हैं। सफाई का तो यूरोप में कहना ही क्या है! सुन्दर विस्तीर्ण सड़कें और वृक्षों की मनोहर कतारें, उद्यान और बिजली की दीप-माला, चित्त को लुभा लेती हैं। इतना बड़ा यह झूरिक है कि हमारे इस थोड़े-से समय में इसका पूरी तरह अवलोकन नहीं हो सकता था। अभी हमें इतना समय भी नहीं था। इसलिए इस समय केवल नगर-शोभा ही देखने का विचार किया था। वापस यहीं आकर कुछ रुकना था, तब यहाँ के प्रमुख स्थानों को देखने का निश्चय कर हमने यहीं संतोष किया। वापस 'होटल' में आ, फलाहार कर, निद्रा की गोद में हमने *विश्रांति ली।*

होटल के मैनेजर को हमने अपने प्रात काल ऑस्ट्रिया जाने का इरादा बतला दिया था, और हमें यथासमय ट्रेन पर पहुँचा देने की व्यवस्था कर देने का भी कह दिया था। प्रात-काल ५॥ बजे भी अंधेरा था। मेरे 'रूम' में एकदम अजीब-सी आवाज आने लगी, निद्रा से एकदम चौंककर मैं उठ बैठा। कमरे में अंधेरा था। बिजली का स्विच दबाया। मेरे कमरे में अंदर की कड़ी भी बन्द थी। ध्यान से देखने पर मालूम हुआ *कि कोने में आलमारी के अंदर से आवाज आ रही है।* मैंने दरवाजा खोला, देखता हूँ 'टेलीफोन' की वह ध्वनि थी। वह रह-रहकर मधुर-सी मन्द-मन्द ध्वनि कर रहा था। मैंने उठाकर उसे कान पर लगाया।

"हाँ, कहिए! कौन हैं आप?"

झील के तट पर प्रकृति
मनोरम दृश्य । (पृ०
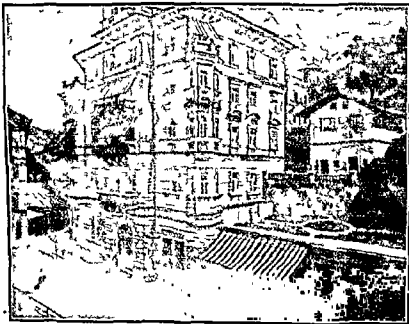
पर्वत पर सुन्द
(पृ० ८६
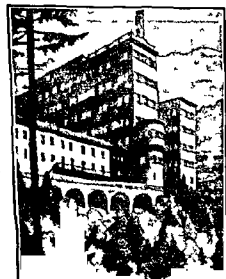
बड़गेस्टाईन की एक अत्युन्नत गगनचुम्बी अट्टा
(ऑस्ट्रिया) । (पृ० ८७)
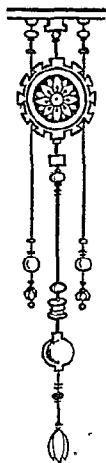
'गुड् मॉर्निङ्ग ! जी, मैं मैनेजर हूँ, आप तैयार होइए, मोटर आ रही है, आधा घण्टा आपको लग जायगा।'

'धन्यवाद ! तैयार हो रहा हूँ, ठीक समय के पूर्व सूचित कीजिएगा।'

"क्या 'चाय' न लीजिएगा ?" मैनेजर ने फिर पूछा।

"ओह ! मैं भूल रहा था। 'चाय' से तो मेरा काम ही शुरू होगा। सबसे पहले आप वही भेजिए।" मैंने उत्तर दिया।

'चाय' लेकर मैंने अपनी तैयारी की। ७॥ बजे फिर फोन की घण्टी बजी। मैनेजर ही था वह, अब उसने सामान उतारने को आदमी भेजा था, उसी की सूचना थी। हमें स्टेशन पर छोड़ने के लिए मोटर नीचे तैयार खड़ी थी। कैसी सुन्दर व्यवस्था और सेवा-भावना है यहाँ ! मैनेजर ने यात्रा की सफलता चाहते हुए मुस्करा कर हमें विदा दी।

ज़्यूरिक से एक छोटे-से अगले स्टेशन पर उस 'कार' ने हमें लाकर छोड़ा और ८ बजे ट्रेन आई। हम सवार हो ऑस्ट्रिया की ओर चल दिए। ट्रेन बढ़ी चली जा रही थी। स्टेशन पर मिलनेवाले सभी यात्री विचित्र भाषा बोलते थे। न वह इंग्लिश थी, न फ्रेंच ! अजीब उचारण थे। हॉं, भाषा में लोच अवश्य था। यह भाषा या तो स्वीस थी, या फिर 'आस्ट्रिच' थी। दोनों ही भाषाओं के बोलनेवाले इस ट्रेन मे अधिकांश थे। हम इनकी आपसी चर्चा के उचारण का आनन्द लेते हुए एक नवीनता के वायु-मंडल में बढ़े चले जा रहे थे।

अब रास्ते मे अंगूर की सुहावनी लताएँ और कृषि के कलामय मण्डप दिखलाई नहीं दे रहे थे। हाँ, मार्ग में सुन्दर झरने, छोटे-बड़े सुन्दर नगर ग्राम और हरियाली अवश्य दिखलाई दे रही थी। 'लंच' के कुछ समय पूर्व ही एक 'बुच' नामक स्टेशन मिला। यहाँ से हरएक डब्बे में आस्ट्रियन सिपाही और पासपोर्ट जॉंच करनेवाले अधिकारी चढ़े।

मैंने आस्ट्रिया जाने की स्वीकृति पहले ही प्राप्त कर ली थी। इसलिए हमारे पासपोर्ट जॉंचने मे उन्हें देर न लगी। परंतु
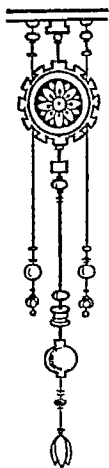
भाषा की कठिनाई जरूर हुई। वे प्रश्न करते थे और हम उनके मुँह की तरफ अज्ञान-दृष्टि से देख कर समझा देते थे कि हम समझते नहीं हैं। उनके इशारे से हम समझ गए कि वे स्वीस् सिक्कों का पूछ रहे हैं। हमने बतलाया, नहीं है। यहाँ कोई, एक देश के सिक्के दूसरे देश में, खास तादाद से ज्यादा नहीं ले जा सकता। एक्सचेंज में जो हानि होती है, वह राष्ट्र सहन नहीं करता; इसलिए सिक्के तथा अन्य देश की वस्तु की जाँच-पड़ताल होती है। हमारे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं थी। उन्होंने हमारे 'पास-पोर्ट' पर स्वीकृति की 'मुहर' लगा दी। यह स्वीस् का सीमाप्रान्त (फ्रंटियर) था। अब यहाँ से ऑस्ट्रिया की सीमा चल रही थी। धीरे-धीरे समतल भू-भाग से उठ कर गाड़ी गगन-स्पर्शी पर्वतों के ऊपर चढ़ाई कर रही थी। ये पर्वत विशेष हरे-भरे नहीं थे, लेकिन बहुत ऊँचे और भयावने अवश्य थे। गाड़ी निर्भयता से भागी चली जा रही थी। अनेक बोगदों (गुफाओं) से वह निकलती, नागिन की तरह बल खाती, वेग से पर्वत-शिखरों को पीछे छोड़ती, कभी नीचे, कभी ऊपर, कभी कमान की तरह और कभी पर्वत के कटि-प्रदेश पर सरपट भागती जाती थी। अब हरीतिमा की अपेक्षा निरंतर ध्वनित होनेवाले झरने का संगीत ही क्षण-क्षण पर श्रवणपुट को स्पर्श करता जाता था। हिमाच्छादित शैल-शिखर सहस्र-रश्मि की किरणावली में स्नान कर इंद्र-धनुष की तरह रंगबिरंगे वस्त्र परिधान कर रहे थे। कभी पर्वत की चोटी पर खेलता हुआ, कभी झरनों के सीकर में रंग भरता हुआ, और कभी दो भागों वाले गिरिशृंग के बीच से अपनी सुनहली छवि दिखलाता हुआ दिनमणि प्रवास को रसमय बना ताजा कर रहा था। समस्त आस्ट्रिया पर्वतों पर ही बसा हुआ प्रदेश है। हजारों फीट की ऊँचाई पर नदी, नालों, झरनों से हरा-भरा सुन्दर-सा यह प्रदेश है। इस प्रदेश में जाने वाले प्रायः 'बर्फ' में खेल-कूद करते झुण्ड-के-झुण्ड दिखाई पड़ते हैं। अनेक स्टेशनों से हृष्ट-पुष्ट युवक-युवती, पार्वत्य प्रदेश की यात्रा की तैयारी में सजे हुए, स्केटिंग

(बर्फ पर चलने) का साहित्य लिये, वजनदार नुकीली कीलों के बूट पहने, चमड़े का निकर और कोट पहने, तथा हाथ में लकड़ी लिये गाड़ी में सवार होते थे। पुरुषों के साथ ही साहसी युवतियाँ भी कम संख्या में नहीं होती थीं। जितना हम आगे बढ़े चले जा रहे थे, गाड़ी इन लोगों से भरती चली जा रही थी। यही सीजन था।

रास्ते में कई नगर तो बड़े सुन्दर और मनोहर मिले। परंतु आज हमें स्विट्जरलैंड की तरह इस ओर के ग्रामों में चमक नहीं दिखाई पड़ी। गाँवों में भारतीयों की तरह गरीबी, झोपड़ियाँ, और फटे हाल लोग भी दिखाई पड़े। फलों की तो बहार इधर भी खूब है, पर अंगूर की खेती उतनी नहीं। ऑस्ट्रिया में गरीबी पिछले युद्ध के कारण ज्यादा हो गई है, इसलिए शान-शौकत उतनी नहीं है। खेतों पर 'स्वीस' की तरह सुन्दर बँगले और 'विला' नहीं दिखाई दिए। हाँ, बाहरी सफाई तो यूरोप की देन ही है। खेतों के लगाने की कला भी ये स्वभावत जानते ही हैं।

ट्रेन में हमें जितने आस्ट्रियन मिले, बड़े नम्र, सज्जन और मृदुभाषी थे। रह-रहकर हमें इनकी भाषा से अपरिचित होने के कारण बड़ा कष्ट अनुभव हो रहा था। रेल के कर्मचारिगण, टिकट कलेक्टर और इन्स्पेक्टर इतने सज्जन और सेवा परायण दिखाई पड़े कि उनके व्यवहार से चित्त प्रसन्न हो जाता था। जिस समय हम 'ज्यूरिक' से ट्रेन में सवार हुए थे, गाड़ी में बहुत भीड़ थी। इसलिए अपना सामान एक अलग डब्बे के पास छोड़ दिया था और हम अपनी सीट पर आ बैठे थे। जब भीड़ कम हुई और हम अपना सामान अपने पास ले आने लगे, तब उधर पास के डब्बे से टिकट जाँच करके आने वाले टिकट-कलेक्टर ने नम्रवदन हो, स्मित मुद्रा से, हमारे हाथ का सामान उठा लिया और हमारे कमरे में लाकर रख दिया।

मैंने उसके इस सौजन्य पर धन्यवाद दिया, तब वह कहने लगा—
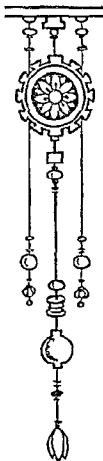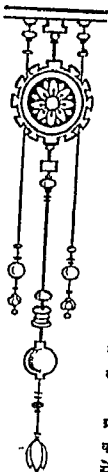
"धन्यवाद की क्या जरूरत है साहब ! यह तो मेरा फर्ज है कि यहाँ आपको कष्ट न होने दूँ।"

जिस समय विनय से पूर्ण ये शब्द मेरे कान में गूँज रहे थे, मेरी आँखों के सामने भारत के रेलवे-कर्मचारी (अपने देश-बन्धु) का यह चित्र था, जब वह रेल-प्रवासी को अपना गुलाम समझ कर झिड़क रहा हो, ठोकरें लगा रहा हो और शान दिखाकर धुतकार रहा हो—उसकी पेटियों को 'तौलकर' चार्ज करने का कर्तव्यपालन कर रहा हो।

रेल के यूरोपीय प्रवास में मुझे प्रायः ऐसे ही नम्रतापूर्ण व्यवहार देखने का, सेवाभाव का, अनेक बार अनुभव हुआ है।

मेरे डब्बे में ही पास की सीट पर कुछ अमेरिका की प्रवासी-कुमारिकाएँ बैठी हुई थीं। उनका सामान भी एक-एक कर वह पीठ पर लादे उनको सम्हालता जा रहा था, और उस समय भी उसे कोई इनाम की चाह नहीं थी, और न 'कुली' बन जाने की झूठी कल्पना ही थी।

शाम के ४॥ बजने का समय था। गाड़ी एक छोटे-से ग्रामीण स्टेशन पर १७ मिनट ठहरने वाली थी। मेरी 'चाय' का समय हो गया था। मैं और मेरे साथी ने टिकट-चेकर से गाड़ी ठहरने का समय पूछा और स्टेशन पर 'चाय' के लिए आर्डर दिया। ग्रामीण स्टेशन था, इस कारण 'चाय' में थोड़ी देर लग गई। जिस समय 'चाय' का आधा प्याला मैं खत्म कर चुका था, मैंने देखा, मेरी ओर वही 'टिकट-चेकर' भागा चला आ रहा था। उसने पास आकर कहा—

"गाड़ी चलती है, आप चाय खत्म कीजिए।"

हमने जल्दी करनी चाही, पर फिर वह हमें रोक कर बोला—"आप इसे पूरी कर लीजिए।"

'चाय' पीकर जब हम गाड़ी के पास गए तो वही चेकर दरवाजा पकड़े हुए हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। हमारे अंदर पैर रखते ही उसने दरवाजा बंद किया और गाड़ी चल दी। यह अतिशयोक्ति नहीं कि गाड़ी हमारी ही प्रतीक्षा में रुकी हुई

थी। इस घटना से मेरे हृदय में इन लोगों के लिए बहुत सद्भाव उत्पन्न हुआ। जरा अपने देश (भारत) का हाल देखिए। भले ही कुछ हो; हमारी गाड़ियों में रेलवे-कर्मचारी कितने लापर्वाह, सेवा-हीन और कठोर होते हैं। क्या वे भी इस तरह अपने प्रवासी यात्रियों को सहूलियतें देने की भावना रखते हैं? यूरोप की गाड़ियाँ अपने यात्री को सुख देने, सेवा करने के लिए हैं। उनके व्यवहार कितने आदर्श-पूर्ण और सुन्दर हैं! और हमारे? ठीक इसके विरुद्ध!

ट्रेन अपनी सतत गति से गिरि-शिखरों पर भाग रही थी। मैं विचारतन्द्रा मे मग्न हो अपने देश की स्वतन्त्रता के सुख-स्वप्नों की कल्पना करता जा रहा था। एक अत्युन्नत शृंग पर गाड़ी वेग से चलने लगी। सहसा ट्रेन के एक कर्मचारी ने आकर सावधान करते हुए कहा—

"अब आपको यहीं उतरना है। तैयार हो जाइए, गुडो-वनिंग!" 'थैंकेशन!' कहते हुए (यह 'थैंक्यू' का आस्ट्रिच रूप है) हमने अपना सामान समेटा।

१९
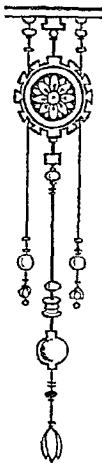
ऑस्ट्रिया के एक नगर में

यह 'बडगेस्टाइन' नामक ग्राम का स्टेशन था। यहीं हमें यह यात्रा पूर्ण करके विश्रांति लेना था। ट्रेन से उतरते ही यहाँ के सर्वश्रेष्ठ होटल 'यूरोपे' के प्रतिनिधि के—जो अपने होटल की 'कार' लिये खड़ा था—अपना सामान सिपुर्द कर हम कार में जा बैठे। अभी सामान की जाँच होनी बाकी थी। परंतु इस बार यह भार स्वयं होटल के उस प्रतिनिधि ने ले लिया था। अपनी चाबियाँ उसके सिपुर्द कर हम होटल की ओर चल दिए। 'कार' धीरे-धीरे नीचे उतर रही थी। सुन्दर भवनों की शोभा देखते हुए, सड़कों की अजीब टेढ़ी-सीधी बनावट पर आश्चर्य करते हुए, १५ मिनट के अंदर ही, हम एक भव्य अट्टालिका के सामने आकर खड़े हो गए। यही 'यूरोपे' नामक मशहूर हॉटेल था। कार पहुँचते ही होटल के नौकर रंगबिरंगी पोशाक पहने हुए सामान उठाने को 'कार' के आसपास आ खड़े हुए। सामान तो हमारा पीछे था, उन्हें निराश होना पड़ा। व्यवस्थापक महाशय ने अपने सर से टोपी उठा कर नम्रता प्रदर्शित करते हुए हमारा स्वागत किया। हमारे साथी ने कमरों की तलाश की। लेकिन सारा होटल ही महमानों से भरा हुआ था, कोई कमरा खाली नहीं था। व्यवस्थापक ने बहुत खेद के साथ अपनी स्थिति बतलाई और कहा कि इस समय यहाँ प्रायः सभी होटलों की यही दशा होगी; क्योंकि इस बार यात्रियों की संख्या इस ग्राम में ज्यादा हो गई है और अभी तक आ ही रहे हैं, तथापि आप चिन्ता न कीजिए। आप थके हुए आए हैं। मैं किसी दूसरे होटल में फोन द्वारा पूछ कर कमरों का पता लगा लेता हूँ। उसने टेबल पर रखे हुए
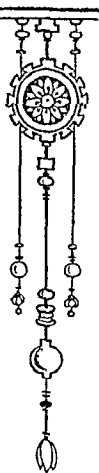
फोन की घण्टी को खटखटाया। क्षण भर मे व्यवस्थापक ने ८–१० होटलों की जाँच कर डाली। कहीं स्थान नहीं था। अब एक अंतिम यन्त्र और बाकी था। वहाँ भी घण्टी खटखटाई। यह 'इम्पीरियल हॉटेल' था। इसकी व्यवस्थापिका ने इन्तजाम कर देने की स्वीकृति दी। हम पुनः अपनी कार मे आए और 'इम्पीरियल हॉटेल' की तरफ चल दिए। नगर के मध्य मे एक निरंतर प्रवाहित होने वाले बड़े-से झरने के पास ही इम्पीरियल का भव्य भवन था। तीसरी मंजिल के कमरे में हम लिफ्ट द्वारा पहुँचाए गए। वहाँ दो आस्ट्रिच देवियाँ स्मित-वदन से स्वागतार्थ खडी हुई थीं। उन्होंने हमारा सामान उठा कर रख दिया। हमारी आवश्यकताएँ जानने की उन्होंने कोशिश की, लेकिन अब तो बड़ी कठिनाई का सामना था। न तो वे देवियाँ अंग्रेजी समझती थीं, न फ्रेंच ही। वे जो कहती थीं, हम नहीं समझते थे; और हमारी आवश्यकताएँ वे नहीं समझ पाती थीं। इशारों से भी जब वे न समझ पातीं, अपनी विवशता जाहिर करती हुई, सखेद मुख-मुद्रा से मन्द स्मित करती, चित्रलिखित-सी खड़ी रह जातीं। उन सेविकाओं में एक जरा साहसी थी। उसने फिर अपना साहस बटोर कर एक बार प्रश्न किया—'पिते ?'

अब तो मैं हँसी रोक न सका। यह 'पिते' और 'माते' क्या बला है ? मेरी हँसी से, वह जो साहस कर बैठी थी, झेंप-सी गई, कुछ बोल न सकी। अंत मे लाचार होकर वे सेविकाएँ वहाँ से चली गईं। हमारे साथी महाशय नीचे उतरे और राह के एक अंग्रेजीदाँ-प्रवासी से दो-चार आस्ट्रियन-शब्द सीख आए। अब उन्होंने फिर कमरे की घण्टी का बटन दबाया। वह देवी पुन हाजिर हुई और उसने वही प्रश्न किया—'पिते ?' अब मैं न हँसा, मैं समझ गया कि 'पिते' के मानी है 'प्लीज' ! मेरे साथी ने, जो चार 'महावाक्य' सीखकर आस्ट्रिया के 'पंडित' बन कर आए थे, शान से आर्डर दिया—

"फ्रुईते-त्रेम् !" (अर्थात तीन 'फ्रूट' !)
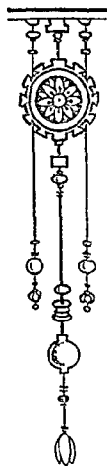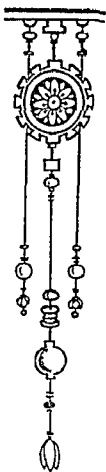
वह समझ गई।

'या-या' (अर्थात् यस्-यस्) कहती हुई तुरन्त वह कमरे से बाहर हो गई। थोड़ी ही देर में वह तीन प्लेट फलों से भर कर सामने रख गई। पानी की बोतल और साफ-सुथरा तौलिया रखना भी वह नहीं भूली। हम सफर से थके हुए थे। कपड़े निकाल कर हाथ-मुँह धोया। फिर इन मधुर फलों का स्वाद लिया। थोड़ी देर बाद पुनः वही देवी अपनी दूसरी एक साथिन को लिये हुए आई। कमरा, बिस्तर साफ कर 'गुडनाव' (गुड्-नाइट्) कर मुस्कराती हुई चली गई।

नगर में सर्वत्र शांति विराज रही थी। होटलों से डान्स तथा वाद्य की मन्द-मन्द ध्वनि वायु वेग के साथ कानों में आ जाती थी। झरना कल-कल ध्वनि से निरन्तर स्वर-साधना करता जा रहा था। उन्मुक्त गगन में समस्त कलाओं के साथ निशानाथ विहार कर रहे थे। चाँदनी में तारों की झिलमिल देखता हुआ मैं भी पथ-श्रमहारिणी निद्रा की गोद में लेट गया।

१६

आस्ट्रिया के एक नगर में

यहाँ रात बहुत छोटी होती है। ठीक ८-८। घण्टे के बाद ही प्रातःकाल हो गया। चाँदनी में तारों की झिलमिल देखते-देखते निद्रा के वश हो गया था, अब रवि-किरणों ने कमरे में आकर मुझे जगा दिया। प्रातःकालीन कृत्यों से निवृत्त हो, गरम सत्कार (चाय-पान) को स्वीकार कर, मैं अपने साथी के साथ शैलमाला पर विहार करने चल दिया। आज यहाँ काफी शीत थी। मैंने ओवर-कोट और हाथ के मोजे भी पहन रखे थे। पर शीत अपना सामर्थ्य वस्त्रों के अंदर भी बतला रही थी। हमने जरा तेजी से चलना शुरू किया, तब कहीं ठंड का असर कम मालूम हुआ।

मार्ग में अनेक सैलानी जोड़े घूमते-फिरते मिलते थे। हम भी उस टेढ़ी-सीधी, ऊँची-नीची सड़क से लगभग दो मील तक चले गए। रास्ते में झरने कहीं भूतलस्पर्श करने के लिए शैलशिखर से अट्टहास करते हुए सतत गति से बहते दिखाई दिए, और कहीं पर्वत के कटि-प्रदेश में बँधे हुए शुभ्रांचल की तरह दीख पड़े। उनके पास से जाते समय हिमकण का स्पर्श होते ही शीत की एक लहर-सी शरीर में दौड़ जाती। फिर भी इस शीत में 'वायु' इतनी नहीं होती कि शरीर को विशेष कष्टदायक बने, इस कारण यह हिम-जन्य शीत सहन हो सकती है।

'बडगेस्टाइन' पर्वत के मस्तक-भाग पर बसा है। बहुत ऊँची चोटी तक यहाँ रेलवे और मोटरें यात्रियों को पहुँचाने चढ़ी आती हैं। इन भाफ और आग से चलने वाली तथा पेट्रोल खाकर भाग-दौड़ मचाने वाली सवारियों का जब यह साहस
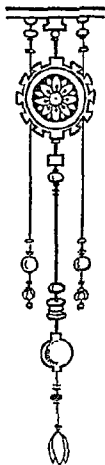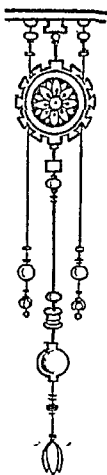
है, तो अन्न-जल से जीवन रखने वाले सजीव द्विपदों का क्यों न सामर्थ्य हो कि वे इन शिखरों पर चढ़ कर हिमाच्छादित शिलाओं के साथ संघर्ष करें ? हमारे इस वायु-सेवन के मार्ग से अनेक छोटे-बड़े शैल-शृंग हिमांचल ओढ़े खड़े दिखाई देते थे। उन पर प्रभात-कालीन रविरश्मि ऐसी मनोमोहक बन रही थी कि बरबस 'पद-गति रुक जाती'।

गगनस्पर्शी गिरिमाला की तो यह शोभा थी। उधर नीचे कई छोटे-छोटे गाँव बसे हुए सुन्दर उद्यानों, वृक्षलता-कुंजों से ऐसा सुन्दर दृश्य उपस्थित करते थे कि शोभा का पार नहीं था। प्रकृति की कमनीय कांति को देख कर मेरा हृदय एक अपूर्व सुख का अनुभव कर रहा था। इस सड़क पर भी, थोड़ी-थोड़ी दूर पर जहाँ सुन्दर स्थल दिखाई पड़े, वहाँ के कलाविदों ने उनका सुन्दर उपयोग कर लिया है। छोटे-छोटे बँगले, कहीं ऊपर, कहीं नीचे बने हुए हैं। फूलों के गमलों का तो क्या कहना है! मार्ग में सुन्दरता से बनाए हुए कई विशाल हॉटेल्स भी हैं, और सड़कों की सफाई, वृक्षों की कतारें, पहाड़ी के ऊपर से नीचे तक हरियाली, यह तो पग-पग पर है। मेरे जैसा भारतीय वेषभूषा वाला व्यक्ति यहाँ ऐसे मँहगे और एकांत स्थान पर क्यों आने लगा ? आज सारे मार्ग के घुमक्कड़ों से लेकर हॉटेल वालों और उस सड़क के आस-पास बसनेवालों के लिए मैं भी एक 'दृश्य' विषय था। वे अपना-अपना काम छोड़ कर मेरी 'झाँकी' करते थे। एक देख कर दूसरे को न्यौता दे बुला लाता था। कनखियों से ताक झाँक जारी थी। मैं जानकर भी अन-जान बना अपनी गति से चला गया और चला आया, किन्तु राह भर यही हाल रहा। जान न सका कि 'ऑस्ट्रिया' को मैं देखने आया हूँ, या 'आस्ट्रियन' मुझे 'प्रदर्शन' की चीज बना रहे हैं ?

एक-डेढ़ घण्टे की इस प्रथम वायु-सेवन-यात्रा ने मुझे चकित, मुग्ध और शर्मिन्दा-सा बना दिया था। अब मैं वापस अपने होटल में आया। कमरे में प्रवेश करने पर पता लगा कि कमरा

साफ कर दिया गया था। 'ब्रेकफास्ट' (नाश्ता) का समय भी हो गया था। फिर उन्हीं मूक देवियों से काम पड़ने को था। बटन दबाकर देवीजी का आव्हान किया। तुरंत दरवाजे पर खट-खटा कर उसी साहसी सेविका ने अपने आने की सूचना दी।

हमने भी स्वीकृति-सूचना देते हुए कहा—"या-या" !!

इधर हमें इस 'या-या' को कहते हुए मन में हँसी भी आ रही थी, क्योंकि इस हजारों मील दूर देश में भी दक्षिणी भाषा के 'या-या' (अर्थात् 'आवो-आवो') शब्द समझनेवाली देवियाँ मौजूद हैं! मन में आया कि प्रयाग के साहित्य-सम्मेलन को लिखा जाय और पूना के महाराष्ट्र-समाज को सूचित किया जाय कि ६५ लाख आस्ट्रियन और कोटि से अधिक स्वीस् जनता जिस मराठी भाषा के कुछ शब्दों को समझ ले, वही हमारी राष्ट्र-भाषा होनी चाहिए! 'हिन्दी' तो इधर नहीं समझी जाती। कहीं एकाध बार काका कालेलकर यहाँ आ जाते तो अवश्य वे मान जाते।

हाँ, तो वे देवीजी हमारी 'या! या!!' (यस्-यस्) सुनकर स्मित मुद्रा से आकर सामने खड़ी हो गईं। उन्होंने वही शब्द दुहराया—'पिते ?'

इस बार मैं अपनी हँसी को रोके रहा। मन में तो जरूर कह रहा था कि 'कहिए माते ?' मेरे साथी ने उस आस्ट्रियन महिला से 'ब्रेकफास्ट' लाने को कहा। मगर वह नहीं समझी। तब क्रमशः समझाना पड़ा—

'दुई-ती' अर्थात् (दो 'टी')

और,

'फ्रुईते' (फ्रूट)

उसने कुछ और चिड़िया की तरह चहकते हुए कहा। पर यह हम नहीं समझे।

'नाय्-नाय्' कह कर हमने उसका इनकार कर दिया।

वह 'थैंकेशन' कहती हुई तुरंत कमरे से बाहर हो गई। उसके जाने पर फिर हमारी हँसी का फव्वारा छूटा। वह
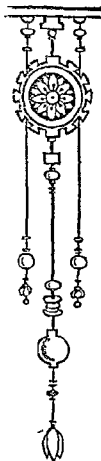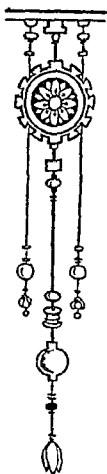
अज्ञातावश जैसा मुँह बनाती थी और हमारी बातें सुनती जाती थी, उसकी मुखमुद्रा पर भावों का जो उतार-चढ़ाव था, देखने की वस्तु हो रहा था।

थोड़ी देर में वह सूचित वस्तु लेकर कमरे मे दाखिल हुई। टेबल पर उसने उन्हें सजाकर रख दिया, और 'गुड मॉर्निंग' कह वह लौट गई।

हम ब्रेक-फास्ट लेते जा रहे थे, और इस भाषा-सम्बन्धी असुविधा का 'हल' सोचते जा रहे थे। इस इम्पीरियल होटल में तो अब भोजन की भी चिंता थी। हम पहले ट्रेनिंग लेते रहें, और फिर इन्हें समझावें, यह कबतक चल सकता ? इस कारण यही निश्चय किया कि यदि दूसरा होटल मिले और सुन्दर व्यवस्था हो जाय तो 'इम्पीरियल' को छोड़ देना ही ठीक होगा। सामने ही एक बहुत बड़ा होटल था। लगभग ३०० कमरे होंगे उसमें, वहाँ जाकर हमने तलाश किया। सौभाग्य वश १० बजे उसके दो कमरे खाली होने को थे। हमने उन कमरों को रिजर्व करा लिया और निश्चिन्तता की साँस ली। १० बजे हमने अपना सामान समेट कर सामने के बहुत सुन्दर सुसज्जित भव्य प्रासाद में अपना आवास बनाया। सारे कमरे, और कमरों में जाने के मार्ग तक, मखमली कालीनों से आवृत थे। कमरों को गर्म-ठण्डा रखने को 'हीटर' यंत्र लगे हुए थे। बेशकीमत कोच और कुर्सियाँ, टेबल, आराम-कुर्सी पड़ी हुई थीं। शुद्ध वायु के प्रवेश करने की सुविधा भी उत्तम थी। नीचे ही हहर-हहर करता, नगर-मध्यवर्ती उन्नत शैल-शिखर से उतर कर पाताल को सँदेस पहुँचानेवाला, 'झरना' वेग के साथ बहता जा रहा था। प्रकृति की अभिरामता से मुग्ध हो इस बेश कीमत कमरे को प्रवास-विश्रांति का साधन बना लिया हमने।

१७

आस्ट्रिया के एक नगर में

मैं जिस नवीन होटल में आकर ठहरा था, उसका नाम 'ग्रैंडहोटल-गेस्टना-फर-हॉफ' था। इसके एक कमरे का किराया ३५-४० शिलिंग दैनिक था। किंतु यहाँ की व्यवस्था बहुत ही सुखप्रद थी। होटल का 'कौंसल' (व्यवस्थापक) अँग्रेजी जानता था, इसलिए हमें सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हो गईं। भोजन और ब्रेकफास्ट के लिए तो इस 'होटल' की इस नगर में अच्छी प्रसिद्धि थी। अन्यत्र ठहरे हुए प्रवासी भी अधिकांश यहाँ लंच, डिनर के लिए आते देखे गए थे। हमारी भी व्यवस्था हर तरह उम्दा हो गई थी। 'वेजिटेबल' (शाकाहार) की मन-माफिक सुविधा पाकर मुझे बहुत समाधान हुआ।

अब मुझे सर्वप्रथम अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए 'रेडियम-बाथ' लेने की चिंता थी। इसीलिए तो मैं भारत से चल कर यहाँ आया था। स्नान की व्यवस्था तो हरएक होटल में यहाँ प्राप्त हो जाती है, पर इसके लिए प्रथम डाक्टरी परीक्षा और स्वीकृति की आवश्यकता होती है। अन्यथा यह स्नान दुर्लभ है। मैनेजर से पूछकर मैं यहाँ के विख्यात डाक्टर मिस्टर ओटोगिर्की से मिलने गया।

कई अमीर-रईस उनसे मिलने की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। जो जिस क्रम से आता था, वह उसी क्रम से मिलने का अवसर पा रहा था। मैं इस देरी से बहुत झुँझलाया। वहाँ टेबल पर पड़े हुए मासिकों के पन्ने उलटता और अपने मन को बहलाता रहा। ठीक १॥ घण्टे के बाद मेरा नम्बर आया। डाक्टर एक स्वस्थ-शरीर, प्रसन्नवदन, विनयशील और सुस्वभाव व्यक्ति थे। मैंने अपने आने का कारण बतलाया और शरीर की
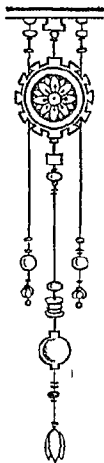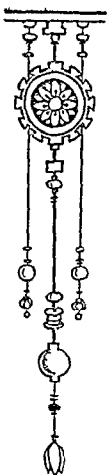
परीक्षा के लिए निवेदन किया। डाक्टर भी मुझे एक दूर देश से आया हुआ समझ बड़ी शांति, नम्रता और उत्सुकता से सलाह देता रहा। शरीर-परीक्षा करके डाक्टर ने कहा कि आप तो स्वस्थ हैं, फिर आप यह स्नान क्यों करना चाहते हैं ?

मुझे आश्चर्य हुआ कि १॥ वर्ष से क्रमश. बीमार रह कर निराश हो जानेवाला व्यक्ति एकदम स्वस्थ कैसे हो सकता है। मेरे मौन स्मित से डाक्टर ने चिन्तित मुद्रा से पुन प्रश्न किया—'आपको क्या तकलीफ है ?'

"मैं १॥ वर्ष से 'एनिमिया' (रक्त-शोषण) का शिकार हो अत्यन्त क्षीण हो गया हूँ। मेरा वजन ४७ पौंड कम पड़ गया है। इसीलिए तो इतनी दूर भागा चला आया हूँ। पर आप कहते हैं कि मैं स्वस्थ हूँ ! इसलिए मुझे विस्मय हो रहा है।"

....

"लेकिन देखिए, आपको सागर की लहरी-स्पर्शिनी समीर ने ही स्वस्थ बना दिया है।" डाक्टर ने कहा, "वास्तव में आपके शरीर मे 'एनिमिया' या कोई ऐसा विकार नहीं है कि आपको इस 'रेडियम बॉथ' की आवश्यकता हो।"

"परन्तु डाक्टर साहब !" मैंने बतलाया, "मुझे यदि इस स्नान से विशेष लाभ मिल जाता हो तो आप अवश्य स्वीकृति दीजिए। यह तो मैं भी अनुभव कर रहा हूँ कि जहाज में एक सप्ताह बीत जाने पर ही मेरा चित्त प्रफुल्ल रहने लगा है, और मैं स्वस्थता अनुभव करता हूँ। हो सकता है कि इतनी जल्दी निरोग हो गया होऊँ ?"

डाक्टर ने मेरी बात का समर्थन करते हुए सस्नेह १५ मिनट तक उस 'स्नान' की स्वीकृति लिख दी ! मैं धन्यवाद दे चलने को तैयार हुआ; पर डाक्टर ने रोक कर बड़ी उत्सुक मुद्रा से पूछा—"हाँ, आपने यह तो बतलाया ही नहीं कि आप खास किस देश में रहते हैं और क्या धन्दा करते हैं ?"

"महोदय ! मैं भारतीय हूँ और आपकी ही तरह एक धन्दा करता हूँ।" मैंने बड़े संकोच से कहा।

पर मेरे साथी ने मेरा पूरा परिचय दे ही तो दिया। डाक्टर ने मुझे अब तो बड़े आदर और प्रेम से पुनः बिठलाया। वे अन्दर गए और कुछ क्षण बाद कुछ कागजों के साथ मेरे पास आकर कहने लगे—

"आप मेरा इलाज कीजिए, मुझे अपनी जिन्दगी का हाल जानने की बड़ी उत्सुकता है।"

मैंने देखा, डाक्टर के पास के कागजों मे पाश्चात्य पंडितों की बनाई हुई पत्रिकाएँ थीं। जन्म-समय, सन्-संवत् आदि लिखकर मैंने सस्नेह बिदा ली। मैंने वादा किया कि आपका 'लाइफ रीडिंग' कर दूँगा।

डाक्टर ओटोगिर्की की जितनी ख्याति, संपत्ति और योग्यता विस्तृत है, उतने ही वे मृदुभाषी और सज्जन पुरुष हैं। उनके पास बड़ी दूर-दूर से लोग चले आते हैं। उस रोज एक 'क्राउन प्रिंसेस' तथा इजिप्ट के वृद्ध एक्सलेन्सी भी आए हुए थे। पर उन्होंने समभाव से क्रमश ही उन्हें देखा। छोटे-बडे का भेद नहीं किया।

मैं इस बहुत बड़े काम से निपट कर अपने आवास-भवन में दाखिल हुआ। मैनेजर को 'स्नान-प्रमाण-पत्र' दिखला कर स्वीकृति ली। अपने कमरे में जा, स्नानीय वेश (बाथ-गाउन) धारण कर, उस लिफ्ट के पास आया, जिसके द्वारा स्नानगृह मे जाना था। तुरन्त ही मैं तीन मंजिल नीचे के एक सुन्दर-स्वच्छ कमरे में पहुँचाया गया। वहाँ गर्म और ठंडा जल, नहाने योग्य टॅपरेचर देख कर, हौज मे भर दिया गया। एक कोच सामने पडी थी, उस पर गर्म वस्त्र बिछे हुए थे, और बिजली के द्वारा वस्त्रों को गर्म रखने की छोटी-सी आलमारी एक तरफ रखी थी। उसमें तौलिया गर्म हो रहा था। दीवार पर एक बड़ी-सी घड़ी, स्नान का निश्चित समय जानने की सुविधा के लिए, लगी थी।

स्नानालय के प्रतिनिधि ने मुझे १५ मिनट स्नान करने की सूचना के साथ स्नानीय नियमों को समझा दिया, और दरवाजा
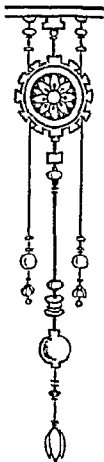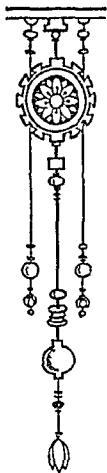
बन्द कर वह चला गया। अब मैं बहुत डरते-डरते उस जल में उतरा। मुझे शका थी कि जल मे बिजली का प्रभाव होना समव है। पर ऐसा कुछ नहीं ज्ञात हुआ। शरीर गीला होते ही सारे शरीर में रोमांच हो गया। 'चींटी' चलती हो, ऐसा सारी देह मे मालूम होने लगा, और सन्न-सन्न-सी आवाज आने लगी। पानी में तैरती हुई एक रस्सी पड़ी थी, मैंने सहसा उसे छू लिया। समझा, शायद जल मे बैठने के बाद यह आधार के लिए रखी है। पर, यह क्या ? दरवाजे के बाहर घण्टी बजने लगी, और उस हौज मे पुन शीतोष्ण जल हर हर कर भरने लगा। तब मैं समझा कि पानी की कमी होने पर यह डोरी खींच ली जाय, तो पुन जल-पूर्ति हो जाती है। इस तरह नया अनुभव ले, १५ मिनट के बाद, जल से बाहर निकला। डाक्टर ने चलते समय बतलाया था कि स्नान के अनन्तर आधा घण्टा विश्रांति लेना लाभप्रद होता है। पर मैं तो जल से बाहर होते ही निद्राऽभिभूत हो रहा था। वहीं कोच पर मैंने विश्राति ली, और नई स्फूर्ति का अनुभव करता हुआ अपने कमरे में वापस आया।

शाम के वक्त एक दूसरी सुन्दर सडक पर घूमने चला गया। यह ठीक मसूरी की 'कैमलनैक रोड' की तरह सुदर थी। सड़क के मध्य में, एक कलाकार, लकड़ी के गीले टुकडे को सामने रख, यात्रियों में जो चाहता उसे कुर्सी पर बिठला, उसी की आकृति बनाता हुआ दिखाई दिया। उस समय एक जर्मन सज्जन सामने बैठे अपनी प्रतिकृति बनवा रहे थे। वह उनके चेहरे को सूक्ष्मता से देखता था, और उनकी आकृति बडी सरलता से बनाता चला जा रहा था। उसका कौशल देखते ही बनता था। कुछ क्षणों में उसने हूबहू नकल तैयार कर डाली थी। बहुत सुघर कारीगरी उसकी थी। दिन भर बस उसका यही काम था। वह अपनी इस कला से २-३ मूर्तियाँ रोज बनाकर लाभ उठा लेता था। इस कलाकार से कुछ आगे चलकर एक और सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ा। एक दूकान से, जो खास तौर

पर यहाँ लगी हुई थी, मूँगफली और फल खरीदकर अनेक प्रवासी घुमक्कड़ जरा-जरा दूरी पर खड़े थे। उनके हाथ से इन भक्ष्य को लेने बड़ी सुन्दर, और विविध रंग की गिलहरियाँ चली आ रही थीं। वे उनके शरीर पर वैसे ही निर्भयता से चढ़ जाती थीं जैसे वृक्ष पर लताएँ चढ़ जाती हैं। कई सैलानी उन्हें दाने खिला कर प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे। इस मार्ग की गिलहरियों और चिड़ियों को आदत पड़ गई है। वे आने-जानेवालों के साथ-साथ दौड़ती चलती हैं और दाना माँगकर ही छोड़ती हैं। इस तरह की सुनहरे रंग की लगभग ३ फुट लम्बी गिलहरी मैंने इसके पूर्व नहीं देखी थीं। मैं भी बहुत देर तक इनकी क्रीड़ा, दौड़-धूप छीना-झपटी देखता रहा और मनोरंजन करता हुआ वापस आया।
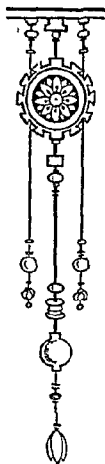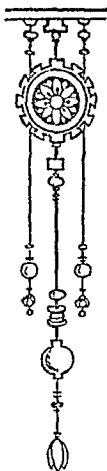
१८

आस्ट्रिया के एक नगर में

'रेडियम-बाथ' का दैनिक उपचार लेते हुए मेरे शरीर में नवजीवन-संचार हो रहा था, स्फूर्त्ति की एक लहर दौड़ने लगी। अन्न पचन भी खूब होने लगा। नियमित और आवश्यक पोषक पदार्थों तथा यथेच्छ फलों के सेवन से क्रमश: मैं अपनेको 'निर्मल-काय' देख रहा था। अब तो प्रतिदिन नगर-निरीक्षण और भ्रमण करने लगा।

आस्ट्रिया के सुन्दरतम स्थानों में सेल्सबर्ग, बडगेस्टन और विएना समस्त यूरोप में प्रसिद्ध हैं। विएना तो आस्ट्रिया की राजधानी ही है। (*अब नहीं है। अब तो 'विएना' ही नहीं, सारा ऑस्ट्रिया ही जर्मन-राष्ट्र के अन्तर्गत एक सूबा बन गया है।* यह घटना होगी, इसकी कल्पना यहाँ रहते हुए हो गई थी। अस्तु।)

सेल्सबर्ग, सुन्दरता की दृष्टि से तथा संगीत और कलाविदों का तीर्थधाम होने के नाते, बहुत विख्यात है। किन्तु बडगेस्टन की अपनी विशेषता है—'रेडियम बाथ'। स्वास्थ्य वर्धक नगरों में इसकी प्रमुखता से गणना है। यों ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सेल्सबर्ग की पर्वत मालिका की 'बडगेस्टन-उपत्यका' सुप्रसिद्ध है। सर्वप्रथम एक रोमन इतिहासकार ने इस भू-भाग का पता पाया था और अपरिमित हेम-राशि (सुवर्ण-समूह) को प्राप्त किया था। यह बहुत प्राचीन—लगभग ईसा की दूसरी शताब्दि की—घटना है। इससे स्पष्ट है कि यह भूमि स्वास्थ्य की निगाह से ही नहीं, प्राचीनता की दृष्टि से भी, सदियों पूर्व का इतिहास रखती है।
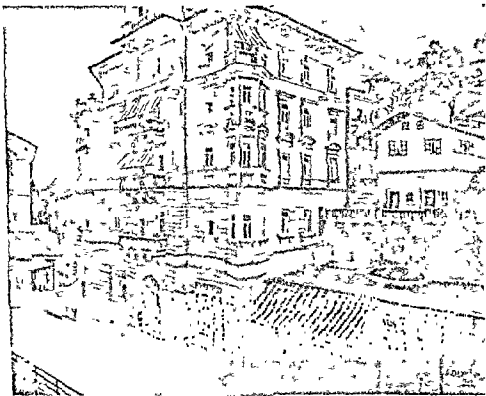
बडगेस्टाईन (ऑस्ट्रिया) का एक हॉटेल इम्पीरियल—लेखक १५ रोज यहाँ रहा है। (पृ० १८

हाँ, तो बडगेस्टन भी पर्वत-शृंग पर बसा हुआ, अतीत इतिहास के वैभव से सम्पन्न, प्रकृति का लीलाधाम है। अनेक भारतवासी ऑस्ट्रिया के इस विश्राम-स्थान में आश्रय पाने और 'काया-कल्प' करने चले ही आते हैं।

यहाँ मोटरों का यातायात किसी खास स्थान तक ही सीमित नहीं है। यहाँ तो गगन-स्पर्शी शैल-शिखर पर बने हुए बँगलों के सामने भी 'कार' की गम्भीर ध्वनि सुनाई पड़ती है। यूरप के अनेक देशों से यह छोटा-सा ग्राम बड़ा महँगा पड़ता है। यहाँ दो मौसम हो जाते हैं—गर्मी का और जाड़े का। परंतु अमीरजादे तो प्रायः गर्मी में ही यहाँ आते हैं; और फिर अपनी स्मृति छोड़ चले जाते हैं। प्रवासियों से प्रेम करनेवाली और नवीनता में आकर्षण रखनेवाली यह भी एक सौध-रमणी है, जो कुछ समय अपने मोह-पाश में बाँधकर फिर तुरंत ठुकरा देती है। लक्ष्मी के वरद पुत्रों का यहाँ आवागमन अक्सर बना ही रहता है। डॉक्टरी सलाह के लिए स्नानार्थी जितनी बड़ी संख्या में यहाँ आते हैं, उतने स्केटिंग के लिए नहीं। सारे नगर में मुश्किल से हजार पीछे ५-७ युवक-युवती दिखाई पड़ते हैं, वृद्ध और अधेड़ पुरुषों की ही तादाद यहाँ ज्यादा दिखाई देती है। शाम के समय प्रायः सभी टहलने निकलते हुए दिखाई पड़ते हैं, या खुले स्थानों मे। यदि कुहरा या वर्षा न हुई तो संगीत की सुरीली तान के साथ चाय पान करते हुए दृष्टिगत होते हैं। टहलने को जानेवालों में से एक वृद्ध अपनी बुढ़ापे की लकड़ी—स्त्री—के कंधे पर हाथ रखे, या सूखी लकड़ी का सहारा लिये, जाता हुआ दिखाई पड़ेगा। ९९ प्रतिशत लोग ४०-५० से ऊपर की वय के ही मिलते हैं। ऐसी हालत मे भी यहाँ प्रति दिन सभी होटलों से संगीत की स्वर लहरी बहती हुई कर्णगत होती है। नाच, रंग, सिनेमा, नाटकों की भी बहार रहती है। उन स्वर्ग के समीप जानेवाले यात्रियों में भी काफी जिन्दादिली मालूम होती है। यूरोप में यही तो जीवन है, वे 'यावज्जीवात् सुखं जीयात्' के सिद्धांत को माननेवाले हैं।
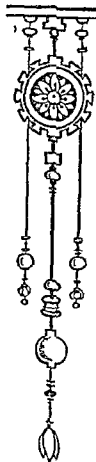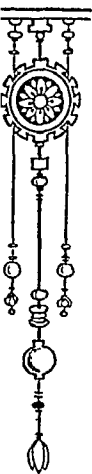
एक दिन मरना तो है ही, फिर आनन्द मना कर ही क्यों न कूच करें ? मुहर्रमी सूरत का तो कोई बूढा भी नहीं मालूम होता था।

यद्यपि मैं इन 'बडगेस्टन' के प्रवासी बूढ़ों से आधा भी नहीं हूँ, तो भी यहाँ आकर मुझे अपने सफेद बालों पर बड़ा गर्व था। कभी-कभी यह खयाल हो जाता था—यह वृद्ध-समूह क्या कहता होगा कि इस नौजवान को यहाँ आने की क्या जरूरत हुई ? परंतु ज्यों ही मैं अपने अमल धवल-शुभ्र केशों को देख लेता था, आत्मा को सांत्वन मिल जाता था—संतोष की साँस लेकर रहता—दिल में यह प्रश्न उठ खड़ा होता कि फिर ये सैलानी और यहाँ के निवासी मेरी ही तरफ क्यों देखते रहते हैं। ये मुझे युवक समझ मेरे यहाँ आ जाने पर चकित तो नहीं हैं ? उत्तर मिल जाता—बालों की सफेदी और अपने भारतीय वेश का आकर्षण समाधान कर देता।

हाँ, तो वयोवृद्ध और रोग शिथिल-गात्र लोग प्राय यहाँ आकर स्वस्थ, भला-चंगा हो कर लौट जाते हैं। बर्फ पर खेलने वाले, जान-जोखिम उठा कर साहस के साथ जड-चैतन्य-युद्ध, हिम-मानव-संघर्ष करनेवाले युवक-युवतियाँ, आते हैं और सीधे पर्वत विहार कर लौट जाते हैं।

बडगेस्टन में आधुनिक सभ्यता के सभी साधन मौजूद हैं। यहाँ और कोई धन्दा नहीं है। 'हॉटेल' ही हैं, जो सीजन भर खुल कर बन्द हो जाते हैं। इस छोटे-से ग्राम में भी १०० से ऊपर होटल हैं, और सभी खूब भरे हुए रहते हैं। होटलों की शोभा का भी क्या कहना है ! सभी उत्कृष्ट कोटि के फर्नीचरों से, कालीनों से, सज्ज हैं। शाम होते ही इन टीलों के ऊपर-नीचे बसे हुए भवनों की विद्युलता और सजावट चकाचौंध उत्पन्न कर देती है—एक अपूर्व दृश्य खडा कर देती है। सभी के द्वारों से, वायु-वाहिनियों से, स्वर-लहरी निरंतर प्रवाहित होती रहती है। ऑस्ट्रियन-जनता यूरोप में सभी देशों से विनय शील और अधिक विनम्र है। ये लोग बात-बात पर आदर व्यक्त
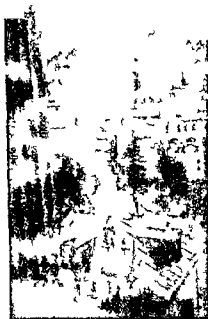
निरंतर हर हर कर प्रवाहित होनेवाला—
बडगेस्टाईन का झरना ! (पृ० १०१)

बडगेस्टाईन के पर्वत-कटि-तट पर बने हुए
भव्य-भवन (पृ० १०२)

एक सुन्दर झरना (पृ० १०४)

करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इनका व्यवहार बहुत मधुर होता है। यहाँ वर्ण-भेद का सवाल ही पैदा नहीं होता। सभी के साथ स्नेहमय व्यवहार कर संतुष्ट रखना इनके स्वभाव में ही दाखिल हो गया है। मनोविनोद के लिए भी यहाँ कई सुन्दर स्थान हैं। नृत्यगृह, कॉफे, सिनेमा, रीडिंग रूम, भाषण-गृह, गिरजा आदि भी कई हैं। वैसे हरएक होटल में भी मनोरंजन की सभी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। एक-एक होटल दो दो तीन तीन सौ कमरों वाले हैं। घूमने-फिरने वालों के लिए कई सुन्दर-सुन्दर सड़कें हैं, जहाँ थोड़ी-थोड़ी दूर पर, मार्ग में वर्षा से बचने के लिए, 'शेड' लगे हुए हैं, कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं, चाय आदि की पास ही में व्यवस्था है।

शहर के मध्य ही में एक बहुत बड़ा जल-प्रपात है। यह नीचे जाकर एक नहर का रूप धारण कर लेता है, और उससे बिजली का उपयोग किया जाता है। वैसे ही यह प्रपात बड़ा सुन्दर मालूम होता है, पर शाम होते ही इसमें रंग बिरंगी रोशनी डाली जाती है—कहीं लाल, कहीं नीली, कहीं हरी। इनका प्रकाश पाकर झर-झर कर गिरनेवाला यह प्रवाही प्रपात भी शोभा का निकेतन बन जाता है। जल-कण इन्द्रधनुष-सी आभा लेकर शीतल समीर बहाते हैं। हजारों नर-नारी इस रमणीयता को देखते हुए अघाते नहीं हैं। प्राय यहाँ कैमराबाजों का अड्डा जमा रहता है। एक फोटोग्राफर तो यहाँ खड़ा ही रहता है, वह हरएक प्रवासी को क्षण भर रोक प्रपात के साथ अपने कैमरे में बन्द कर लेने की कोशिश करता है।

मैं जिस कमरे में ठहरा था, उसके एक द्वार से यह सुन्दर झरना दिन-रात मुझे दिखाई पड़ता था। चाँदनी रात में जब इन्द्रधनुष की तरह विद्युल्लता से परिवेष्टित हो यह झरना बहता है, तब आकाश से उतर कर चाँद भी इसके साथ खेलने आ जाता है। मैं अपने पलँग पर पड़े-पड़े ही काँच की खिड़कियों से देखा करता कि हजारों रूप बना कर चन्द्र इसके साथ कैसा खेल रहा है!!
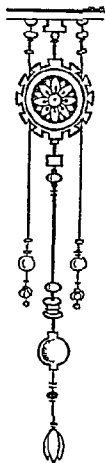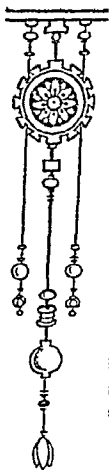
रात्रि की एकांत शांति में गर्जन करता प्रपात और भी वेगवान बन जाता तथा चाँद को हजारों खंडों में विभक्त कर प्रस्तर-खंडों पर पछीटता हुआ पाताल तक छोड़ आता, और विजय-गर्वोन्मत्त बन जाता ! पर चाँद भी क्यों हार मानने लगा ? उसी क्षण वह ऊपर चढ़ उसके साथ होड़ लगाने आ पहुँचता ! प्रपात ज्योंही नीचे छोड़कर भागता, तुरंत चन्द्र को फिर ऊपर अपने ही साथ देख वह पत्थर पर सिर पटक लेता और फिर उसे पकड़ कर नीचे खींच ले जाता। यह खेल खत्म ही नहीं होता। दोनों ही रात-रात भर थकते नहीं, और मैं देखते-देखते आखिर थक कर निद्रा की गोद में जा पड़ता! प्रातःकाल हुआ कि रवि-किरणों से उसका जंग छिड़ जाता! दिन-रात वह युद्ध-रत रहता, पर हार मानकर पीछे नहीं हटता! मैं तन्मय बना न जाने कब सो जाता।

ठीक ६ बजे (आस्ट्रिया के) प्रात.काल आस्ट्रियन सुंदरी के मुँह से मधुर स्वर में 'गुडंताक्' ! 'ती, सर् !' (गुड मार्निंग, टी, सर !—नमस्ते ! चाय ? महाशय !) सुनकर 'या-या' [यस्-यस्] कह जग पड़ता, और चाय की आराधना करता !!!

१८

आस्ट्रिया के एक नगर में

आज प्रातःकाल ही से आकाश में बादल छा रहे थे। समस्त बडगेस्टन् पर कुहरे की हल्की-सी शुभ्र चादर फैल रही थी। लोगों का यातायात रुक गया था। दिनकर भी शीत से ठिठुर कर आज बाहर नहीं आ रहे थे। लीजिए, अब रिम-झिम भी शुरू हो गई। यात्रिगण अपने-अपने कमरों में ही घिरे हुए थे। एक दूसरे से मिलते ही गुड्मॉर्निङ्ग (या गुडमॉर्गन) कह कर तुरंत 'वेरी बेड् डे' (बहुत खराब दिन है) कह देते थे! उन सैलानियों को यह कुहरा और बारिश बहुत खटक रही थी; उनके आमोद-प्रमोद में बाधा उत्पन्न हो गई थी।

शाम के समय जब बारिश बंद हो गई तब जनता में एक उत्साह की लहर दौड़ गई। कहीं-कहीं बादल के टुकड़े नीले आकाश में सफेद पैवन्द की तरह दिखाई पड़ रहे थे। अपनी-अपनी बरसाती कन्धे पर लटकाए सैलानी लोग होटल छोड़ कर घूमने निकल पड़े थे। आज रास्ते में कई भारतीय लोग दिखाई पड़े। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास भी घूमते हुए सड़क पर मिले। इनके सिर पर भारतीय टोपी थी। मुझे भी टोपी पहने देख उनकी तीव्र गति रुक गई। वे पास आकर खड़े हो गए और सहसा अनेक प्रश्न कर लिये। मैं उनकी सरलता और सौजन्य से बहुत प्रभावित हुआ। हम लोग सड़क के एक कोने पर खड़े हो बहुत देर तक बातें करते रहे। सर पुरुषोत्तमदास भी यहाँ 'रेडियम् नेचर-क्योर बॉथ' लेने के लिए ही ठहरे हुए थे। वे अब एकाध रोज ही में पुनः इंग्लैंड चले जानेवाले थे। थोड़ी दूर जाने पर एक और हिंदुस्तानी सज्जन दिखाई दिए। वे वेश-भूषा से, तथा रंग में भी, पूरे ऑस्ट्रियन ही थे। सिर के टोप पर आस्ट्रियन स्टाइल का 'पर' लगाए हुए थे। मैं एक
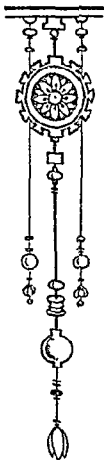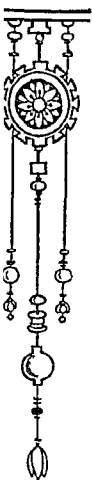
झरने के पास खड़ा उसकी कल-कल ध्वनि सुन और निकट की मनोहारी हरीतिमा की शोभा देख रहा था। वे मेरे पास से गुजरते हुए हिंदी में बोले—"कैसा सुन्दर 'सीन' है!"

मेरे कान के पास हजारों कोस दूरी पर अपनी मातृभाषा की आवाज बड़ी प्यारी लगी! मैंने उनकी ओर विस्मय-मुद्रा से देखा। वे मुस्कुराते हुए नमस्कार कर फिर बोले—'आप कहाँ रहते हैं?'

मैंने नमस्कार कर उत्तर देते हुए बतलाया—'मध्यभारत का हूँ, और आप?'

'आह! आप तो बहुत दूर से आ रहे हैं? मैं तो निकट पंजाब कपूरथला का हूँ'—उन्होंने मेरे प्रश्न के उत्तर में कहा।

मैंने पूछा—'महाराजा-कपूरथला भी तो यहीं कहीं ठहरे हुए हैं, शायद?'

'जी, इसी सड़क के उस सुन्दर होटल में, और मैं भी वहीं हूँ'—वे बोले।

'आपसे मिलकर अत्यन्त आनन्द हुआ। एक देशबन्धु से मिलकर इस दूर देश मे कितना सुख मिलता है, यह मेरा हृदय ही जान रहा है'—मैंने कहा।

वे बोले—'ठीक यही दशा आप मेरी भी समझिए, तभी तो मैं आपसे बोल पड़ा था।'

शाम के समय हमने उन्हें अपने साथ 'चाय' के लिए आमन्त्रित किया। वे आये, और बड़े स्नेह से अपना परिचय सुनाते रहे। यहाँ इन दिनों और भी कई महाराजा ठहरे हुए थे, इन्दौर के भूतपूर्व महाराजा तुकोजीराव होल्कर भी यहीं थे, और बड़ोदा के महाराजा सर सयाजीराव सा० गायकवाड भी आ रहे थे।

प्रात काल जब मैं बाथ रूम में जाने के लिए लिफ्ट के पास पहुँचा और बटन दबाया, तो क्या देखता हूँ कि महाराजा सर सयाजी राव स्नान कर उसी लिफ्ट से ऊपर आ रहे हैं! दरवाजा खुला, और जिससे मैं उतरने जा रहा था, उसीसे वे

बाहर निकले। मैं एक तरफ हट गया, और नमस्कार किया। उन्होंने भी मन्द-स्मित मुद्रा से नमस्कार किया। मैं स्थानीय वेश में था, इसी लिए तुरन्त उस लिफ्ट के अन्दर दाखिल हो गया। मन में अनेक तर्क-वितर्क करता हुआ स्नान-गृह में जा पहुँचा।

दूसरे रोज कोई ८—८॥ बजे मेरे कमरे का दरवाजा खट-खटाकर एक सज्जन अन्दर आए। ये भारतीय थे। मेरा परिचय पूछ कर फिर थोड़ी देर बाद आने को कहकर चले गए। इन्होंने सिर्फ यही बतलाया कि वे बड़ौदा के हैं। अब मैं सब कुछ समझ गया था कि ये मेरा परिचय क्यों पूछ गए और ये पुनः कहाँ गए हैं। कल की घटना एक बार फिर मेरी आँखों के सामने आ गई। आध घण्टे के अनंतर उन्हीं सज्जन ने आकर कहा—"आपसे महाराजा साहब मिलना चाहते हैं!" यह सुन कर मेरे आश्चर्य और आनंद का ठिकाना न रहा! इस बात का आनंद भी हुआ कि अपने देश के एक महान् नरेश के दर्शन का इतनी दूर के देश में अवसर प्राप्त हो रहा है। मैं तैयार हो थोड़ी देर ही में उनके साथ हो लिया। उसी हॉटेल के एक भव्य कमरे में महाराजा ठहरे हुए थे। उन आगत सज्जन ने अंदर जाकर मेरे आने की सूचना दी। क्षण-भर में मैं कमरे में दाखिल हुआ।

महाराजा साहब मुझे देखते ही उठ खड़े हुए, और बड़े स्नेह से मुसकुराते हुए हाथ मिलाया। पास की कुर्सी पर बैठने को कह कर वे अपनी कुर्सी पर विराजमान हुए। लगभग २० मिनट तक महाराजा साहब से स्नेह-पूर्ण चर्चा होती रही। महाराजा बहुत जल्दी-जल्दी बोलते हैं। उनकी वाणी में ओज और वेग रहता है। थोड़े समय में उन्होंने मुझे यूरोप के विषय में बहुत जानकारी दी। मुझे यहाँ क्या, कैसे और किस दृष्टि से देखना चाहिए, तुलनात्मक दृष्टि से क्या क्या बातें देखने—जानने योग्य हैं—इसके संबंध में अस्खलित वाणी से महाराजा अपने अनुभव पूर्ण-विचार व्यक्त कर रहे थे। उनकी हर बात से प्रौढ़ता और
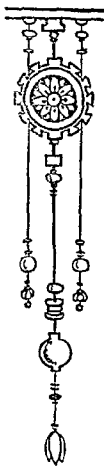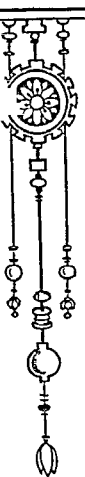
सूक्ष्म निरीक्षण की योग्यता प्रकट हो रही थी। इस समय वे लगभग ७७ वर्ष की वय के वृद्ध होकर भी युवकों को लज्जित करने वाली स्फूर्ति, तेजस्विता और कर्मण्यता रखते हैं। उनके सामने टेबल पर कागजों का ढेर लगा हुआ था। वे अन्य नरेशों की तरह यूरोप में जाकर आराम नहीं करते, बल्कि वे उस निर्मल वातावरण में एकांत चित्त से अपने राज्य का गुरुतर-भार-वहन करते हुए अत्यंत श्रम के साथ यूरोप के स्वास्थ्य प्रद वातावरण मे कर्मरत रहते हैं। युवकों की तरह उनका सुन्दर सुगठित स्वस्थ शरीर, ठिंगना कद और स्फूर्ति, देखकर आश्चर्य और आदर उत्पन्न होता है। वे क्षण भर भी चुप नही बैठते, काम करते ही रहते हैं। उनके पास गिने-चुने ३—४ व्यक्ति ही रहते हैं। सारा काम वे स्वयं ही करते हैं। बहुत नियमित और व्यवस्थित रहने के कारण ही इस वृद्ध वय में भी वे युवकों की-सी तेजी रखते हैं। भारतवर्ष के समस्त नरेशों में आज वे एक महान व्यक्ति हैं। उनके जैसा विद्या-वयोवृद्ध, अनुभवी, विज्ञ शासक और कर्मण्य स्वाभिमानी नररत्न राजा, प्रजा और अन्यदेशीय विशिष्ट पुरुषों से समान आदरणीय, दूसरा कौन महाराजा है? उनका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली है। मि० अर्ल बाल्डविन (भू० पू० ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री) जैसे बडे भारी राजनीतिज्ञ ने कोरोनेशन के अनन्तर ही महाराजा-बड़ौदा की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की थी। अमेरिका-जैसे प्रजा-तन्त्रीय राष्ट्र में सर्व धर्म-परिषद के प्रधान होने के समय गार्ड आफ-ऑनर का सम्मान प्राप्त करनेवाले आप ही पहले भारतीय राजा हैं। राजा होने के कारण नहीं, बल्कि एक अनुभवी विद्वान, सफल एव कुशल शासक होने के नाते भारत ही नहीं समस्त देशों में वे आदरणीय माने जाते हैं। स्वभाव उनका बहुत प्रेमल, सरल तथा सरस है। उनका व्यक्तित्व आकर्षक है। वे इतने मधुरभाषी हैं कि अपने प्रथम परिचय में ही सामनेवाले को आकर्षित कर लेते हैं—मुग्ध कर छोड़ते हैं।

कुछ समय तक वे स्वय ही प्रवाह के साथ बोलते चले गए। मैं तो उनकी तरफ चित्र की तरह देखता रहा। उनका वाक्य

पूर्ण होने पर मैंने नम्रता के साथ निवेदन किया—

"श्रीमंत ! अपने देश से बहुत दूरी पर अपनी मातृभूमि के एक आदर्श महापुरुष नरेन्द्र के दर्शन का सौभाग्य पाकर मैं कितना सुखी और आनंदित हुआ हूँ, यह मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। मेरे लिए आज बहुत बड़ा सुदिन है......!"

बीच में ही रोकते हुए महाराज ने अपनी सरलता से मन्द-स्मित करते हुए कहा—

'नहीं, मैं महापुरुष नहीं हूँ। मैं तो अपनी मातृभूमि का एक छोटा-सा सेवक हूँ।'

मैं इन महान् राजपुरुष की सरलता और सादगी पर मुग्ध था। कितने बड़े महाराजा कैसे सहृदय और सादगी लिये हुए हैं ! मुझ पर उनकी महत्ता का बड़ा प्रभाव पड़ा।

बहुत समय हो चला था, मैंने महाराजा का आभार मानते हुए चलने की इजाजत चाही। महाराजा ने फिर स्मित मुद्रा के साथ उठ कर विदा देते हुए कहा—"आपसे मिलकर बहुत आनंद हुआ है। कभी बड़ौदा जरूर आइए।" ❀ मैं इन क्षणों की अमिट स्मृति लिये हुए अपने कमरे में आया। आज मेरे लिए यह एक महत्त्वपूर्ण घटना ही थी।

महाराजा सर तुकोजीराव होल्कर के दर्शन का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ। उनके जैसे मृदुभाषी, सहृदय, अत्यन्त कुशल और उदार नरेश भी दूसरे नहीं हैं। आज भी मध्यभारत की प्रजा के हृदय के वे महाराजा ही हैं। उनका व्यक्तित्व भी बहुत ऊँचा है। वे एक उच्चकोटि के राजपुरुष हैं। समस्त यूरोप में भी उनकी ख्याति है। महाराजा के नाते जितना आदर-सम्मान उनका है, उतना निःसंदेह अन्य का नहीं। वे महान् स्वाभिमानी और आन-बान-शान के प्रभावशाली पुरुष हैं। वे निर्व्यसन, निरभिमान और मधुरता की साकार मूर्त्ति हैं;

❀ खेद है कि श्रीमंत बड़ौदानरेश सर सयाजीराव गायकवाड़ का स्वर्गवास हो गया है !!
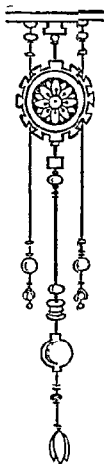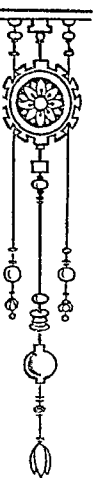
तेजस्वी तथा विमल सुकुमार हृदय के आकर्षक नरेन्द्र हैं, एक बार मिलने पर वे अपना बनाकर छोड़ते हैं! बहुत कम नरेश उनके जैसे व्यवहार-प्रवीण होंगे। उनकी सहृदयता, उदाराशयता और विविध योग्यता किसी भी महान् नरेन्द्र से विशेषता लिये हुए है। भारतवर्ष में उनके स्वाभिमान, शान और उदारता की अनेक बातें मैंने सुनी हैं। परन्तु सुदूर यूरोप में भी उनकी गुण-गौरव-गाथा अनेक जगह, बड़े आदर और सद्भाव के साथ, सुनी है। भारतवर्ष के इन दो कीर्त्तिलब्ध नरेन्द्रों के दर्शन का, और कृपा-कोर का, सौभाग्य प्राप्त कर मैंने अपनी इस स्वास्थ्य-यात्रा को सर्वथा सफल माना।

१०

'सेलसबर्ग' के पथ पर

आज मैं पर्वत-मालिका के उस भाग की ओर चला गया, जहाँ अनेक शिखर आकाश से बातें करते हुए खड़े थे। कोई ऊँचे, कोई नीचे, हरे-हरे वस्त्रों को पहने, सिर पर हिम-मुकुट धारण किए, अपने हमजोलियों (पर्वत-श्रेणियों) के साथ रवि-किरणों में स्नान कर रहे थे। युवकों की एक टोली आई, और उन शुभ्र शिखरों पर खेलकूद मचाने लगी। प्रौढ़ पुरुषों की तरह पर्वत शांत खड़े रहे। साहसी तरुण बच्चे उनकी पीठ पर खेल-कूद मचा रहे थे, वे निर्लिप्त अचल थे। युवक ऊपर चढ़ते और किलकारियाँ मार कर नीचे फिसल जाते। धीरे-धीरे शीतल पवन भी बहता हुआ आता और बार-बार पर्वत-शिखराच्छादित हिम को छू-छू कर वेग के साथ भाग जाता। वह भी उस क्रीड़ा में भाग ले रहा था। और, वे कोमल हरित तृण ? वे शैशव की मोहिनी से पर्वत-प्रदेश की अभिरामता बढ़ा रहे थे, अपने इस जनक की गोद में आनन्द से लहरा रहे थे और झूम रहे थे—एक दूसरे से ताल दे-देकर इन युवकों की खेल-कूद और दौड़-धूप देख आनंद में मस्त हो या दो मित्रों की तरह गलबहियाँ डाले मद समीरण के झोंके के साथ एक बार इधर और एक बार उधर झूम-झूमकर नाच उठते; उन युवकों की क्रीड़ा मे सहयोग देते। श्वेत शृंगों से फिसलना, 'स्केटिंग' करना, साधारण काम नहीं है—जान की बाजी लगाना है, दु साहस है। कठोर पहाड़ों से कोमल-तरुण-हृदयों की होड़ है। जडचेतन का संघर्ष ही तो है! किन्तु यहाँ इन 'जड-चेतनों' मे कितनी अभिन्नता, कितनी तन्मयता और परस्पर कितना आकर्षण है ? पर्वत के चारों ओर जरा-सा समतल भू-खण्ड पाकर अनेक टोलियों के तंबू तने हुए
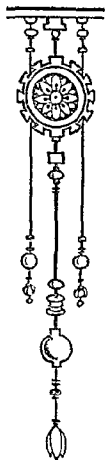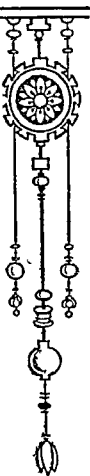
थे। कहीं खेल-कूद जारी थी, कहीं चाय-नाश्ता चल रहा था, और कहीं तैयारी हो रही थी। रवि-किरणों के ताप से बर्फ पिघल-पिघल कर जब बहने लगती, तब उसी नूतन स्रोत के मधुर जल का पान कर ये प्राणी प्रकृति के साथ घुलमिल जाते। खेल-कूद के इन मस्ती से भरे हुए दिनों मे इन्हें शहराती जीवन से क्या काम ?

मैं घण्टों तक सघन लता-कुंजों में बैठा इनके हिम-विहार को देखता रहा, अंत मे लंच का समय निकट आया देख सुख-स्वप्न से विचलित हो गया। आज ही हमें यहाँ से २॥ घण्टे के मार्ग पर आस्ट्रिया के एक दूसरे सुन्दर नगर 'सेल्सबर्ग' को जाना था। अपने नियमित कार्यों से निबटकर सामान समेटा, और २॥ बजे की गाड़ी से 'सेल्सबर्ग' के लिए हम रवाना हो गए। अब रेल-पथ पर्वत-शिखरों का ही था। कहीं-कहीं जरा नीचे उतरने की जरूरत हुई, नहीं तो गाड़ी पहाड़ों के सिर पर ही सफर कर रही थी। रास्ते में जितने स्टेशन मिले, उनसे अधिकांश यात्री 'सेल्सबर्ग' के ही लिए गाड़ी में चढ़ रहे थे। इन दिनों 'सेल्सबर्ग' के संगीत के जल्सों के बारे में बड़ा प्रचार किया जा रहा था। हजारों दर्शक, संगीत-प्रेमी, अमीर-गरीब, सभी इसी उद्देश्य से 'सगीत तीर्थ' की यात्रा के लिए चले जा रहे थे। करीब ४॥, ५ बजे गाड़ी सहसा एक बड़े सजे हुए स्टेशन पर आकर रुकी। 'सहसा' मैंने इसलिए कहा कि यहाँ की ट्रेनें चलते-चलते या ठह-रते समय सीटी (विसल) नहीं बजातीं; सहज ही रुक जाती हैं, और ठीक समय होते ही चल पड़ती हैं। भारतीय अभ्यास के कारण हमें 'भ्रम' हो जाता था। पर कण्डक्टरों ने हमारी सर्वदा सहायता की।

स्टेशन बहुत विशाल था, और रंग-बिरंगी ध्वजा-पताकाओं से खूब सजाया गया था। यहीं से विदित होने लगा कि अवश्य ही यहाँ कोई विशेष प्रकार का आयोजन होना चाहिए। यहाँ तो लगभग सारी ट्रेन ही खाली हो गई। हमने भी अपना सामान कुली के सिपुर्द किया और यहाँ के प्रथम श्रेणी के विशालकाय,

सुसज्जित आवास-गृह (होटल) 'यूरोप' में जाकर विश्रांति ली। इस होटल में और भी दो-एक भारतीय सज्जन दिखाई पड़े। एक तो गुजराती सज्जन तथा दो देवियाँ थीं, और महाराज तथा युवराज कपूरथला, और दो-तीन उनके साथी भी यहीं ठहरे हुए थे। महाराजा की दो आस्ट्रियन परिचारिकाएँ भी उनके साथ ही थीं। परन्तु समस्त भारतीय बहुत 'रिजर्व' बनकर रहे। हाँ, उनका यूरोपियनों में अवश्य मेल-जोल सहज हो रहा था। एक सज्जन तो अपनी विदेशी देवी को भारतीय वेश में साथ लिये हुए थे, जो हम लोगों को देख कन्नी काट जाते—नजर नहीं मिलाते थे। पता नहीं चला कि वे कौन सज्जन थे। मेरे 'रूम' के आसपास ही इनका निवास था। इसलिए अक्सर बाहर निकलते हुए किसी-न-किसी की झाँकी हो ही जाती थी।

२१
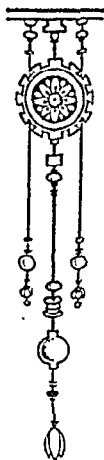
'सेल्सवर्ग' में सात रोज

मैं सेल्सबर्ग में एक सप्ताह तक रहा। प्रतिदिन इस सुन्दर नगर की शोभा को निरखता था।

सेल्सबर्ग, आस्ट्रिया का मनोहर नगर और सृष्टि का सुन्दर निकेतन है। यह पर्वतशृंगों पर बसा हुआ नगर नहीं है, प्रत्युत गिरिमालाओं की हरीतिमा से आवृत अधिकांश समतल भूभाग पर भव्य प्रासादों और विद्युल्लताओं से चकाचौंध उत्पन्न करने वाला शोभाधाम है।

सेल्सबर्ग बड़ी सुन्दरता से बसा हुआ है। शहर के बीचो-बीच नदी उसकी अभिरामता में चार चाँद लगा रही है। रात को जिस समय समस्त नगर चंद्रिकामय हो जाता है, निर्मल-सलिला नदी का तट कितना शोभामय बन जाता है, यह वर्णनातीत है; और उसी समय पर्वत-शृंग पर लगा हुआ एक सर्च-लाइट नगर पर चारों ओर से प्रदक्षिणा लगाया करता है। वह कभी तो प्रासाद-मुकुटों के दर्शन करा देता है, कभी प्रकृति की माया पर चाँदनी छिटका देता है, और कभी सड़कों को आभा-मय बना देता है। एक अपूर्व छटा की सृष्टि हो जाती है इस तरह! सारे नगर पर उसकी परिक्रमा का क्रम जारी रहता है। उसकी द्युति से नगर सौगुनी सुन्दरता का घर बन जाता है। हजारों युवक-युवतियाँ जहाँ-के-तहाँ खड़े रह जाते हैं। उस समय रंग-बिरंगे परिधानों में सुन्दरता की उन जीवित प्रतिमाओं की शोभा देखने योग्य हो जाती है। शहर के बीच में बने हुए उद्यान भी ऐसे मोहक रूप में बने हुए हैं कि घण्टों तक वहाँ से हिलने का जी नहीं चाहेगा। विचित्र कारीगरी के विभिन्न रंगों के फूलों की सुन्दर-सुन्दर क्यारियाँ पर्शिया की कीमती कालीनों को भी शर्मिन्दा करने में पर्याप्त होंगी। इन सुन्दर हरी-भरी क्यारियों के आसपास अनेक शुभ्र प्रस्तर-प्रतिमाएँ चतुर कला-

दूर—सेल्सवर्ग में सात रोज (पृ० ११२)

नगरमध्यवाहिनी सुरम्य सरिता (पृ० ११
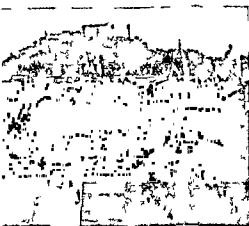
ꣳ प्रस्तर मूर्तियों और कमनीय कुसुमक्यारियों से
राम नगर का मनोरम उद्यान ! (पृ० ११२)
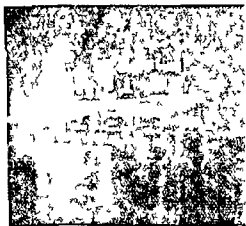
नैश चंद्रिका और प्रकाश से धवल रजतकांतिमय न
(पृ०११३)

सौधशिखर पर जनावास (पृ० ११२)

दूसरा मनोहर उपवन (पृ० ११३)

कारों की कीर्त्ति को लिये, मौन भाव से, दर्शकों की आँखों में जादू डाल रही हैं। कोई-कोई प्रतिमाएँ तो अपने मस्तक से निरंतर गंगा प्रवाहित कर रही हैं। रात को जब इनके चारों ओर विविध रंगों की बिजली का प्रकाश होता है और फव्वारे चलने लगते हैं, तब सेल्सबर्ग 'मानव-चुम्बक' बन जाय तो आश्चर्य ही क्या है। जो जहाँ खड़ा हो वहीं वह रुक जाता है।

सेल्सबर्ग संगीत, नृत्य और नाट्य के लिए सबसे अधिक विख्यात स्थान है। यहाँ प्रतिवर्ष अनेक उत्सवों का, जल्सों का, आयोजन होता रहता है। कला-प्रेमी, स्थान-स्थान से, अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने, जन-मन रंजनार्थ यहाँ आ जुटते हैं। अनेक महान संगीत-पारंगतों को जन्म देने का इस भूमि को सौभाग्य प्राप्त है। हजारों कलाकार तो इनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने ही चले आते हैं, और अपनी कोमल कला का सुरभित सुमन यहाँ उनकी स्मृति में अर्पित कर जाते हैं। समस्त यूरोप से हजारों नर-नारी इसी मोहिनी से आकृष्ट हुए चले आते हैं।

अभी ऐसे ही एक जल्से में इंगलैंड के भूतपूर्व सम्राट एडवर्ड (ड्यूक आफ विंडसर) भी यहाँ आए थे। इन दिनों भी यहाँ अनेक रईस टिके हुए हैं और आवागमन जारी है। इस वर्ष (१९३७) का सितम्बर मास जल्सों का ही महीना है। यों तो सारा आस्ट्रिया ही यूरोप का 'हृदय-स्थान' है, पर सेल्सबर्ग तो आस्ट्रिया का भी 'हृदय' है। यहाँ भव्य प्रासाद हैं, विशाल राज-मार्ग हैं और साथ ही काशी की तरह छोटी-छोटी गलियाँ भी हैं। समस्त आस्ट्रिया में यही जगह ऐसी है जहाँ रोमन, जर्मन और स्लेवियन् जनता एक-हृदय मन इस रंगस्थली में सोने में सुगन्ध की तरह रह रही है।

अब यह कहना कठिन है कि यह एकता कायम रह सकेगी या नहीं। जर्मनों ने आस्ट्रिया हजम करने का आरंभ यहाँ से ही किया। हिटलर के सैनिक सर्वप्रथम 'सेल्सबर्ग' में ही सशस्त्र घुसे थे।

११
'सेल्सबर्ग' में सात रोज
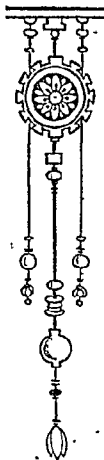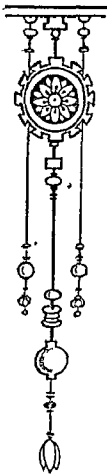
सेल्सबर्ग के लिए कहा जाता है कि यहाँ-जैसे नाटक समस्त यूरोप में नहीं खेले जाते! यहाँ की नाट्यशाला एक महान् अट्टालिका है। इसमें हजारों नर-नारियों का सहज समावेश हो जाता है। एक 'मठ' की पृष्ठभूमि का विस्तृत प्रांगण नाट्य-स्थल बना लिया गया है। अभी यहाँ प्रति तृतीय दिन सुप्रसिद्ध नाटक अभिनीत किए गए हैं। मैं जिस रोज यहाँ आया हूँ, उसी रोज महाकवि गेटे की एक रचना का अभिनय किया गया था। आगामी तीसरे रोज होनेवाले नाटक को मैंने भी देखना निश्चित किया। सीट अपने होटल द्वारा प्रथम ही रिजर्व करानी पड़ी। नाट्यस्थल के बाहर दर्शकों का बड़ा भारी समूह उमड़ रहा था। यदि टिकट पहले से न ले लिये होता तो स्थान पाना संभव न था। बड़ी दूर-दूर से लोग आकर जमा हुए थे। इस नाटक का नाम 'एवरी मैन' (Every Man) था।

नाटक का रंगमंच मकान के अंदर नहीं, खुली जगह में लकड़ी के तख्तों से बनाया गया था और खुले आकाश के नीचे ही दर्शक साधारण बेंच और कुर्सियों पर बैठे थे। कुर्सियों पर बिछाने के लिए वहाँ हवा भरे हुए रबर के तकिए १-१ शिलिंग में बेचे जा रहे थे।

इस नाटक के दर्शकों में इटली की 'क्राउन प्रिंसेस्' भी आई हुई थीं। दर्शकों में जहाँ-कहीं इटेलियन लोग बैठे थे, उन्होंने अपनी इस भावी सम्राज्ञी के मान में खड़े हो-होकर जय-घोष किया। मुझे तो इन स्वतन्त्र-देशवासियों के इस प्रकार राज-भक्ति-प्रदर्शन से अपने देश में और इनमें कोई अंतर नहीं दिखाई दिया। चाहे इसे कमजोरी कहें, या और कुछ, परन्तु राजकुल
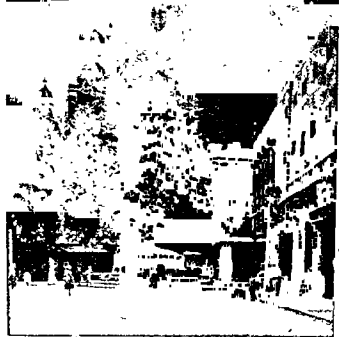
सौधोसंग में रंगमच (पृ० ११४)

की प्रतिष्ठा की भावना, मानव-हृदय में, सर्वत्र न्यूनाधिक रूप में विद्यमान है ही। हाँ, तो नाट्यभूमि में इटली की प्रिंसेस् के आगमन पर लोगों की दर्शन-लालसा उमड़ पड़ी थी। थोड़ी देर तक व्यवस्थापकों को शान्ति स्थापित करने के लिए यत्नशील रहना पड़ा, और जब इधर कुछ सफलता हुई तो पत्रकारों और शौकीनों के कैमरों ने थोड़ी देर तक श्रीमतीजी को परेशान कर डाला !

अब मेरी बारी आई। मेरी भारतीय 'टोपी' ने भी हजारों नेत्रों को अपनी ओर आकृष्ट किया। यह भी किसी 'प्रिंसेस्' से कम बनकर मेरे सिर पर नहीं बैठी थी ! मेरे आगे-पीछे और दाहिने-बाएँ सिर्फ निगाहें ही निशाना बना रही होतीं तो हर्ज न होता, पर कैमरे भी बंदूक का निशाना लगा रहे थे। मुझे यह जानने के लिए समय ही नहीं मिला कि किस-किसकी निगाहों में और कैमरे में मैं बंद हो रहा हूँ ! एक फ्रेंच रमणी मेरे निकट आई और पास की कुर्सी पर बैठते हुए कहने लगी—'ओह ! आपने और आपकी इस सुन्दर टोपी ने न जाने कितनों को आकृष्ट किया है !'

मैंने कहा—'धन्यवाद ! पर यदि मैं यह जान सकता कि मुझे कितनों ने पसंद किया है, और मेरी टोपी को कितनों ने, तो कुछ लाभ भी उठाता।'

श्रीमतीजी ने मुस्करा दिया। 'आप तो बड़े चतुर हैं'—कहकर चुप हो गई।

मैंने फिर कहा—'मेरे या मेरी टोपी के आकर्षण का और क्या सुबूत होगा कि आप-जैसी श्रीमती मेरे निकट निःसंकोच आकर बैठ गई !'

'निःसदेह। आप तो भारतीय हैं न? आप क्यों न आकर्षण का विषय हों?' वह बोली, 'पर देखिए, लोग तो आकृष्ट ही हुए हैं, और मैंने तो आपका परिचय तक पा लिया है।'

मैने रुख बदलते हुए नम्रतापूर्वक कहा—'इसके लिए मैं निज को ही धन्यवाद दूँ, या आपको, अथवा इस रंगशाला को?'
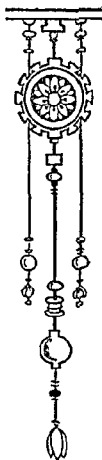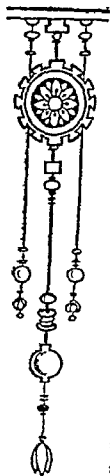
ये श्रीमती फ्रांस के एक छोटे-से नगर की रहनेवाली थीं और बड़े कारखानेदार की लड़की थीं; सेल्सबर्ग की सैर करने अपनी माता और छोटे भाई के साथ आई हुई थीं।

भारतवासी तो इस नाट्यभूमि पर और भी थे, परंतु वेशभूषा में अकेला 'भारतीय' मैं ही था। इसलिए कुतूहल होना स्वाभाविक ही था।

अब जोर से घण्टा-नाद सुनाई दिया। सभी एकचित्त और सावधान हो गए। घण्टा-नाद के समाप्त होते ही भवनों के अंतिम दो कोनों पर दोनों ओर से मंगलाचरण-स्वरूप गीत गाया गया। चार युवक इस ओर थे और चार ही उस ओर। उन्होंने उच्च स्वर से, गगन-स्पर्शी भवनों पर खड़े हो, गीत की मधुर ध्वनि से वायु-मण्डल व्याप्त कर दिया! एक अजीब दृश्य था वह!

यह सारा खेल ही पुरातन काल की भावना का दिग्दर्शक था। उसी प्रकार की वेशभूषा, और समस्त दृश्य भी प्राचीन काल के ही थे। इसीलिए आधुनिक उपकरणों का उपयोग न करते हुए शुष्क काष्ठ की पीठ के ऊपर ही वह खेल खेला जा रहा था। मंगलाचरण तो भारतीय प्रथा का द्योतक था ही। नाटक का संक्षेप में भाव यह था कि एक धनिक, धन-मद से उन्मत्त हो, मानवता को भूल जाता है। वह अपने संबंधियों को, मित्रों को—सभी को अपने धन के विश्वास पर ठुकरा देता है। कष्टपीड़ित, स्नेही, आप्त लोग उससे सहायता चाहते हैं; पर वह कञ्जूस हो जाता है। इधर नाच, रंग, विलासिता में तन्मय बना रहता है वह रात-दिन। उसे जब मौत स्वयं आकर सूचना देती है तब वह भयग्रस्त हो पागल की तरह बेचैन हो उठता है। धीरे धीरे सब संगी-साथी उसे छोड़ देते हैं। जिस धन पर उसका अभीतक पूर्ण विश्वास रहा, उस थाती को अपने सामने मँगवाकर वह खुलवाता है। पेटी को खोलते ही उसमें 'द्रव्यदेव' की एक सजीव मूर्ति सामने खड़ी हो जाती है और कहती है कि तेरा अब मुझ पर कोई अधिकार नहीं रहा,
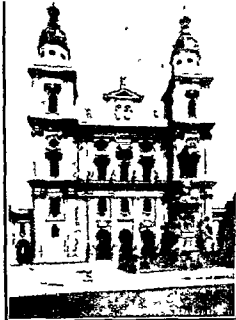
सेल्सबर्ग का ए० स्मारक भवन (पृष्ठ ११७)

सेल्सबर्ग (आस्ट्रिया) का टाउन-हॉल (पृ० ११७)

भोगने का समय समाप्त हो गया, मैं यथास्थान जाता हूँ।'

जिस पर आज तक उसने विश्वास किया था, उस पैसे की तरफ से इस तरह निराश हो वह व्यग्र हो उठता है। जीवन उसका दूभर हो जाता है। तब उसे मार्गदर्शिका के रूप में एक साध्वी मिलती है। उसके उपदेश से वह धीरे-धीरे ईश्वर पर विश्वास करने लगता है। अब उसे शांति मिलने लगती है। संतोष की साँस ले वह जीवन्मुक्त हो जाता है। अंत समय उस साध्वी के साथ अप्सराएँ उसे लेने आती हैं और खेल समाप्त हो जाता है।

इस अभिनय द्वारा भौतिकवादी यूरोप को ईश्वर-विश्वास, मानवता और सावधानता की शिक्षा दी गई है। नाटक की भाषा जर्मन-आस्ट्रियन की खिचड़ी थी। इसलिए जिन्होंने इंगलिश अनुवाद की पुस्तिका पढ़ ली थी, उन्हें आनन्द मिल सका। मैंने पहले ही पुस्तक मँगवाकर सारी कथा समझ रखी थी। मुझे इस नाटक में कोई ऐसी अपूर्वता तो विदित नहीं हुई; हाँ, पात्रों के अभिनय की स्वाभाविकता अवश्य आकर्षक थी। फिर यह प्रकृति के खुले प्रांगण में था, सभी कुछ प्राकृतिक ही था। यह भूमि नाट्य-प्रयोगों के लिए सफल मानी जाती है।

यहाँ की जनता अधिकांश मध्यमश्रेणी की है, परन्तु गरीबों में और अमीरों में एकाएक अंतर देखना मुश्किल है। आस्ट्रियन, धन-मदोन्मत्त नहीं होते। वे बड़े मिलनसार, विनय-शील, बात-बात पर नम्रता प्रदर्शित करनेवाले होते हैं।

सेल्सबर्ग में बड़े-बड़े होटल हैं, टावर हैं, और २–३ विशाल-काय चर्च भी हैं। अनेक संस्थाएँ, स्कूल, बड़े-बड़े शानदार भवनों में अवस्थित हैं। इतनी हरियाली, पर्वतमाला, जलाशय, उद्यान आदि के रहते हुए भी कहीं गंदापन या मलेरिया के कीड़े नहीं हैं। शहर में सड़कों के अलावा अनेक गलियाँ भी हैं। पर वे गलियाँ ट्रॉम, बस आदि को अपने में छुपा लेती हैं; इनके आवागमन के मार्ग बने हुए हैं। महँगी तो यहाँ भी काफी है। दूकानों की सजावट और शोभा देखते ही बनती है। बडगेस्टन्
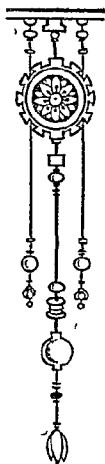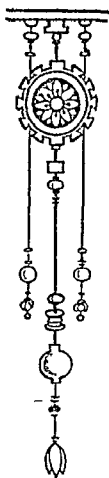
में मालूम होता था, व्यापार नहीं है । परन्तु सेल्सबर्ग तो व्यापारिक चहलपहल का नगर है ।

आस्ट्रिया के सुन्दरतम स्थानों में सेल्सबर्ग एक ऐसा स्थान है जो यौवन की तरह उन्माद से भरा हुआ सौंदर्य का आगार है, परन्तु इस यौवन में विकार नहीं है—सात्विक ओज और स्वाभाविकता है ।

२३

विएना (आष्ट्रिया)

सेल्सवर्ग से दो घण्टे के मार्ग पर ही आस्ट्रिया की राजधानी की मनोहारिणी नगरी 'विएना' है। 'विएना' को हम उद्यानमयी नगरी कह सकते हैं। स्थल स्थल पर जलाशय, उद्यान और गगनस्पर्शी प्रासाद इसकी विशेषताएँ हैं। 'विएना' की नगर-रचना बहुत सुन्दर है। यूरोप के स्वास्थ्यप्रद नगरों में इसका प्रमुख स्थान है। अनेक देशों के छात्र डाक्टरी की शिक्षा लेने यहाँ आते हैं। यहाँ बड़े-बड़े सेनीटोरियम, अस्पताल और प्रयोग-शालाएँ हैं। इलाज के लिए भारतवर्ष के अनेक राजा महाराजा भी प्रायः यहाँ आकर रहते हैं। प्रेसिडेंट पटेल यहाँ आकर रहे थे। उनका स्वर्गवास भी इसी स्वर्गीय भूमि पर हुआ था। बाबू सुभाषचन्द्र बोस, स्वर्गीय कमला नेहरू आदि भी यहीं इलाज के लिए आई थीं। अब भी कई महाराजा यहाँ बसे हुए हैं। संस्थाओं की अट्टालिकाएँ और राज-प्रासाद बड़े भव्य और कलामय बने हैं। डाक्टर शुसनिंग, जो आष्ट्रिया के वर्त्तमान चांसलर हैं, अब (शुसनिंग जर्मनी की जेल में बंद हैं, या उनका मरण हो गया है, ठीक पता नहीं) बड़े देशभक्त और सर्वमान्य नेता हैं। विरोधी दल भी उनके व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हैं। परंतु 'नाजियों' का जाल आष्ट्रिया में सर्वत्र फैला हुआ है। यह डा० शुसनिंग का ही व्यक्तित्व है, जो बड़ी शांति किंतु दृढ़ता के साथ सभी को अभी तक एक सूत्र से संचालित कर रहा है। (परंतु अब जर्मन सत्ता के अधिकार में आ जाने के कारण डॉ० शुसनिंग जेल में बन्द पड़े हैं और स्वतन्त्र आष्ट्रिया हिटलर के पंजे में अपनी जिंदगी के दिन बिता रहा है।)

विएना की समाजवादी म्युनिसिपैलिटी ने शहर में सुन्दरता लाने में बड़ा श्रम किया है। सुन्दर मकान और क्रीड़ा-भवन,
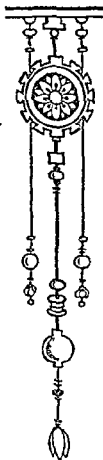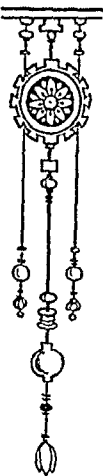
उद्यान तथा संस्थाओं के जागरण में इसका बहुत बड़ा हाथ माना जाता है। यों तो यह सारा नगर ही यूरोप में फ्रेंच राजधानी पेरिस नगरी को छोड़ सभी से सुन्दर और मनोहर समझा जाता है।

नगर के मध्यभाग में पुरातन-कालीन स्मृति-अवशेष-विभाग 'मावेन' नाम से अब भी अवस्थित है। इसके निकट सेंट-स्टिफिन-चर्च और 'हाफ़बुर्ज' महल है; और महल के दूसरी ओर ही यूरोप भर में प्रसिद्ध 'ऑपेरा-हाउस' (रंग-मंच) है। ऑपेरा के चारों ओर अत्यन्त भव्य गगनचुम्बी प्रासादोंवाली अण्डाकृति सड़कें चली गई हैं, जिनकी गोलाई के कारण यह 'रिंगस्ट्रासे' नाम से पहचाना जाता है।

ऑपेरा के निकट वाली '१२ नवंबर' नामक सड़क इतनी सुन्दर, उद्यानयुक्त और विद्युल्लता-वेष्टित है कि दिनरात हजारों नर-नारी की चहल-पहल यहाँ बनी ही रहती है।

ऑपेरा की नयनरम्य कलापूर्ण अट्टालिका के चारों तरफ 'केरंटनेरटिंग' नामक सड़क है, जो मध्य में वृक्षलताओं की हरीतिमा से ऐसी मोहनी डालती है कि लोगों का समूह इसी गोलाई में भूल-भुलैया की तरह घूमा करता है। इस स्ट्रीट पर आस्ट्रिया के व्यापारि-वर्ग, धनिकवर्ग और रईसों की ही प्रायः इमारतें हैं।

नगर के एक ओर 'डेन्यूब' नदी के पश्चिम में एक बहुत बड़ा और बहुत ही सुन्दर 'प्रातेर-पार्क' नामक उद्यान है। यहाँ नदी की वेगवती धारा का दृश्य भी दर्शनीय ही है। हजारों सैलानी युवक-युवती इस पार्क में सैर करने आते-जाते रहते हैं। आस्ट्रिया की यह राजधानी वास्तव में बहुत सुन्दर है। परन्तु कहते हैं, युद्ध के अनंतर इसमें वह जीवन नहीं रहा। भवनों की भीड़-भाड़ में लोक-संख्या की कमी और गरीबी की सुस्ती खटकती रहती है। तथापि हम इस 'प्रातेर-पार्क' को विएना की जान कह सकते हैं। युवक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सभी के आमोद-प्रमोद का यह एकमात्र अति रम्य स्थान है, जहाँ यूरोप का जीवन

लक्षित होता है। पार्क की रचना भी ऐसी नयनरम्य एवं कलापूर्ण है कि वहाँ से हटने का जी नहीं चाहेगा।

'रिंगस्ट्रासे'-जैसी शानदार सड़क उतनी भरी हुई नहीं मिलती, जितनी उसकी भव्यता है। युद्ध के अनंतर उध्वस्त, विगलित, जर्जर आस्ट्रिया की यह दशा श्मशान-शांति-जैसी ही है। और नहीं तो क्या?

'विएना' का टाउनहाल नगर-मध्य में भीमकाय खड़ा हुआ है। इसी तरह यहाँ का विश्वविद्यालय (युनिवर्सिटी) भी देखने लायक है। भव्य और आकर्षक भवन है। बाहर कई स्मारक बने हुए हैं। यहाँ विज्ञान की शिक्षा लेने भारतीय और अन्य देशों के लोग बराबर आते हैं। परन्तु सन् १५-१६ के बाद इस राष्ट्र की आर्थिक निर्बलता ने शिक्षा में कुछ शिथिलता ला दी है। छात्रों और अध्यापकों की दशा संतोषजनक दिखाई नहीं दी।

'श्वार्टजेन बर्डी' नामक उद्यान, फव्वारे और राजप्रासाद भी शोभा के धाम बने हुए हैं। 'ग्रावेन' नामक बाजार अपने अतीत वैभव को छुपाए हुए धुँधली-सी स्मृति के रूप में नगर-मध्य में दिखाई पड़ता है। यहाँ नवीनता के आवरण में, मध्य में पुरातनता का आवास है।

सुन्दर उद्यान, कृत्रिम झरने, नूतन कलामय शिल्प के मूर्तिमान् भवन, राजप्रासाद और राष्ट्रीय विभागों के आफिस भी दर्शनीय हैं।

एक ओर विशाल म्युनिसिपल इमारत खड़ी है, जिसके आसपास सुन्दर उद्यान लगा हुआ है।

एलिजाबेथ और मेरिया थेरेसिया तथा क्रिस्तीना के स्मारक, फ्राइ-आइट-सप्लाइज तथा प्रातेर और कार्ल के चौराहे, शनब्रून के राजमहल और अत्यन्त विस्तृत एवं मनोहर बगीचे, बेल्वेडियर-पार्क आदि अनेक स्थान वास्तव में सुन्दर, आकर्षक और देखने योग्य हैं। नगर के एक ओर 'बाडेन' नामक स्थान है, जहाँ के स्रोत रोगियों के लिए रामबाण माने जाते हैं। अनेक रोगी यहाँ स्रोत-स्नान के लिए आया करते हैं।

१४
आस्ट्रिया की स्मृति
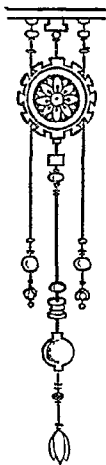
बडगेस्टन, सेल्सबर्ग और विएना की सैर करने के पश्चात् मेरी आस्ट्रिया-यात्रा पूर्ण हो जाती है; परंतु आस्ट्रिया को छोड़ते हुए मेरे मन में बड़ा दुःख होने लगा। इतने समय तक इस देश का आतिथ्य ग्रहण कर, इसकी प्रकृति की अभिरामता मे अपनी शरीर-स्थिति को स्वस्थ पाकर और विनम्र आस्ट्रियनों के अनुरागपूर्ण व्यवहार का अनुभव कर एक मोह-सा उत्पन्न हो गया था! मैं जल्दी ही इस राष्ट्र से विलग नहीं होना चाहता था। परंतु समय के संकोच और यूरोप के अन्यान्य प्रगतिशील राष्ट्रों के देखने की बलवती इच्छा ने ही मुझे बलात् यहाँ से आगे बढ़ने को विवश कर दिया!

अपने घर पर बैठ कर यह लेख-माला लिखते समय भी आस्ट्रिया की पर्वतमयी भूमि का दृश्य मेरी स्मृति पर अंकित हो सामने प्रत्यक्ष-सा लक्षित हो रहा है। जान पड़ रहा है, आज भी मैं उसी कुहरे की दूधिया चादर से आच्छादित, हरीभरी, सौध-शृंगों पर बसी हुई, भव्य भवनों, विद्युल्लता-वल्लरी से आवेष्ठित अनेक प्रपातों और उद्यानों की पुनीत शोभा से आवृत पर्वत-मालिका पर ही सैर कर रहा हूँ।

आस्ट्रिया के एक नगर में (सन् ३७ के अगस्त में) होटल-मैनेजर के साथ बैठ कर उसके प्यारे देश की चर्चा करते समय उस प्रौढवयस्क व्यक्ति की त्यौरियाँ चढ़ रही थीं। वह अपने देश की दीनता का सत्य वर्णन करते हुए दर्द अनुभव कर रहा था। युद्ध की पाशवी लीला का चित्र मानों उसके सामने आ गया था। उसने कहा था—"···महासमर के अनन्तर आस्ट्रिया को महान कष्टों का सामना करना पड़ा है। हम लोगों को आज खाना और कपड़ा ठीक तरह नसीब नहीं होता। युद्ध के पूर्ण
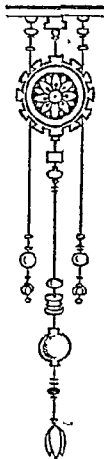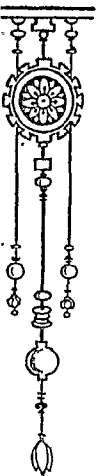
होते ही ऐसी दशा हो गई थी कि एक अर्से तक रोटी तो क्या, पाव-भर आलू भी खाने को मिलना दुश्वार था। अनेकों ने पेड़ की पत्तियों से अपने पेट पाले हैं! आज जरा हम सम्हले हैं, परंतु धन्दा नहीं है। धन्दे के लिए राष्ट्र अर्थ-सामर्थ्य अनुभव नहीं कर रहा है। इधर यहाँ यह दशा है, उधर सिर पर युद्ध की विभीषिका निकट आती दीख रही है और भविष्य पुनः अंधकारमय विदित हो रहा है।" मैंने देखा, उसकी आँखों में पानी भर आया था!

"परंतु अब आप युद्ध को टालने का कौन-सा रास्ता सोच रहे हैं? और, मान लीजिए कि युद्ध नहीं टला तो आस्ट्रिया की क्या स्थिति होगी?" मैंने पूछा।

वह सम्हल कर साहस के साथ बोला—"युद्ध टालने से टल नहीं सकता और न आस्ट्रिया ही स्वतंत्रता से अपना अस्तित्व कायम रख सकता है। अब तो आस्ट्रिया के निवासी यही सोच रहे हैं कि हिटलर का—जो हमारा, आस्ट्रियन—ही है, सहारा लेना ही श्रेयस्कर होगा। हम जर्मनी के साथ होकर ही रह सकते हैं…।"

मैंने उसकी बात काटकर पूछा—"लेकिन इसमें आस्ट्रिया अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कैसे कायम रख सकेगा? और, अभी आप यह कह चुके हैं कि डा० शुसनिंग (चांसलर-आस्ट्रिया), जो एक सच्चे देश-भक्त और चतुर व्यक्ति हैं, हर तरह आस्ट्रिया को अन्य राष्ट्रों के साथ समुन्नत बनाए रखेंगे और उसी पंक्ति में रखने के लिए सारी बुद्धि-शक्ति खर्च कर रहे हैं। यह कैसे शक्य है?"

वह क्षण-भर चुप रहा। कुछ सोचने के पश्चात् निस्तब्धता भंग करते हुए कहने लगा—"आप ठीक कहते हैं; लेकिन आस्ट्रिया को जर्मनी में मिलने के सिवा दूसरा चारा नहीं है। यह राष्ट्र ऐसे घातक वैज्ञानिक साधनों से समन्वित युद्ध में अकेला तो रह नहीं सकता। डॉ० शुसनिंग की भावनाएँ पवित्र और आदरणीय हैं, तथापि वे जर्मनों के जाल में पूरी तरह आ

चुके हैं। यह एकता (जर्मन-आस्ट्रियन) हुए बिना रहेगी नहीं, आज तो हम यही अपने देश के लिए श्रेयस्कर मानते हैं।"

जिस समय यह चर्चा हो रही थी, मालूम होता है, आस्ट्रियन स्वतन्त्रता अंतिम श्वास ले रही थी। जर्मन-नाजियों का जाल समस्त आस्ट्रिया पर फैला हुआ था। हर क्षेत्र में जर्मन महत्ता और हिटलर की शक्ति का प्रदर्शन स्पष्ट विदित होता था। पता नहीं, जिन मैनेजर महाशय से मैंने उपर्युक्त चर्चा की थी, वे भी जर्मनी के कोई व्यक्तिविशेष ही थे या और कोई!

आस्ट्रिया की स्थिति है भी नाजुक। वह एक ओर म्युनिक (जर्मनी) से लगा हुआ है, दूसरी ओर इटली की सीमा है और तीसरी ओर स्वीस-राष्ट्र है। अधबीच में यह पर्वत-शृंग पर तल के शक्तिराष्ट्रों से आवृत हो गया है। समस्त आस्ट्रिया में बहुत बड़ी तादाद में जर्मन जनता आकर बसी हुई है। और, जर्मनी से त्रस्त हो वे यहूदी लोग, जो भाग खड़े हुए थे, इस राष्ट्र में आश्वस्त हो बस रहे थे। परंतु उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि जर्मनी के दाँव ऑस्ट्रिया पर भी लगे हुए ही हैं। अनेक तर्क-प्रवीण राजनीतिक भविष्य-वादियों ने हिटलर से मुसोलिनी की भेंट होने के प्रथम प्रसंग पर ही यह मान लिया था कि यह बहुत बड़ा दाव है और हो-न-हो यह आस्ट्रिया या जेकोस्लेवेकिया की हार-जीत का प्रश्न है; यह कितना सत्य हुआ है! आज आस्ट्रिया बिना किसी हिंसा के एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में—स्वतंत्रता से पराधीनता में अपना निजत्व खोकर—परिवर्तित हो गया है। जिस बात की कल्पना हमें एक वर्ष पूर्व हो चुकी थी, वह इस प्रकार सहज ही शक्य हो सकेगी, संदेह था। परंतु आस्ट्रिया के अचानक परिवर्तन पर आश्चर्य का कारण नहीं। जिसे हिटलर की दुर्दान्त शक्ति का पता है, उसकी कुटिल एवं षडयन्त्र-पूर्ण शासनशैली का ज्ञान है, वह इसे असभाव्य और विस्मय की बात नहीं समझेगा।

आस्ट्रिया पर उसका अर्से से दाव था। उसने अपने-आपको आस्ट्रियन बताकर आस्ट्रियनों पर अपना प्रभाव डाला था कि
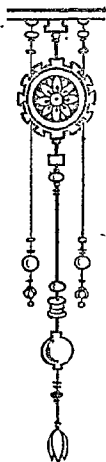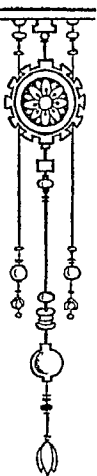
'मैं भी तो तुम्हीं में से एक हूँ।' वह स्वयं अ-जर्मन हो नूतन जर्मनी का विधाता बना हुआ है। आस्ट्रियनों में उसने अपनी आत्मीयता का भाव प्रकट कर, चतुराई के साथ अंतरंग प्रचार कर, एक विचित्र जाल बिछा दिया था। उसी का फल है कि डा० शुसनिंग और भूत पूर्व चांसलर डफलस—दोनों का 'अर्थहीन' प्रभाव उतना कारगर सिद्ध न हो सका। डा० डफलस ने नाज़ियों के प्रचार रोकने के अनेक जोरदार प्रयत्न किये और उस समय प्रीमियर डा० शुसनिंग ने उग्र विरोध भी किया। उसीके फल स्वरूप पूर्वविरोध के कारण तथा जर्मनी के शत्रु यहूदियों को आश्रय देने के फलस्वरूप, आज डा० शुसनिंग को कारागार में बंद रहना पड़ा है। पता नहीं, किसी भयानक दण्ड को भोगना भी पड़े! हिटलर के शत्रु अपने अस्तित्व को रख सकें, यह आशा नहीं की जा सकती।

आज आस्ट्रिया के अनेक विद्वान, व्यापारी, सम्पन्न यहूदी जुल्म के शिकार हो रहे हैं। आस्ट्रिया के जिन विद्वानों से मैं मिला हूँ उनमें दो यहूदी सज्जन थे। भगवान जाने—आज वे कहाँ होंगे!

आस्ट्रिया ने कई उतार-चढाव देखे हैं। वह महायुद्ध-काल में हंगेरी का समिलित राज्य था। नेपोलियन के परास्त कर देने पर पचास वर्ष अनंतर तक जर्मनी छोटे-छोटे रजवाड़ों में विभक्त हो गया था। अनेक बार प्रयत्न होने पर भी वह सयुक्त नहीं हो सका।

आस्ट्रिया और प्रशिया के राजा इस प्रकार के संघ के प्रमुख बनने को लालायित थे। इसके पूर्व कई शताब्दियों तक प्रसिद्ध 'हेप्सबर्ग' के घराने के अतर्गत यही आस्ट्रिया, जर्मनी का, सब से शक्तिशाली राज्य बनकर रहा था। फिर तीसरे नेपोलियन ने इसे परास्त कर डाला था। बाद बिस्मार्क की शक्ति और सहयोग पाकर इसने डेनमार्क को गिरा दिया और तुरत ही आस्ट्रिया पर हाथ डाला। इस समय इसने इटली को सहायता पा ली थी और थोड़े से समय के बीच ही पुनः प्रशिया ने इसे धर दबाया था। पर प्रशिया की प्रभुता से चौंककर बिस्मार्क ने

आस्ट्रिया को सहयोगी बनाया। आगे चलकर इटली को भी शामिल कर एक 'त्रिकुटी' बना डाली थी। परंतु महासमर ने सारा नक्शा ही पलट दिया। और आज? आज तो बिना किसी समर के आस्ट्रिया का नाम भी समाप्त कर दिया है [जर्मनी ने आस्ट्रिया को 'आस्टोमार्क' के नाम से सूचित किया है !] तथा जर्मनी ने अपना नक्शा पलट लिया है। कौन जाने, भावी महासमर में अब इनका क्या रूप होगा?

कुछ भी हो। मुझे तो यह अनुभव हुआ है कि आस्ट्रियनों में वर्ण-भेद का प्रश्न नहीं है। ये बड़े ही मिलनसार, विनयी *और भद्र लोग हैं। रहन सहन बहुत सीधा-सादा है। अधिकांश* लोग सुस्वभाव, आतिथ्य प्रिय तथा सहृदय हैं। रूखापन उनमें मैंने कहीं नहीं पाया। आस्ट्रिया में व्यापार कम दिखाई दिया। शिक्षा भी अन्य प्रगतिशील राष्ट्रों के मुकाबिले में कम है। कृषि है, परंतु पर्वतमय भूमि होने के कारण कृषि के वर्त्तमान-युगीन साधनों का उपयोग कम ही होता देखा जाता है। खेती, घोड़ों और गायों से होती है। होटलों का व्यवसाय बहुत बढ़ा हुआ है। ज्यादातर ग्राम और ग्रामीण ही हैं। गरीबी भी सर्वत्र लक्षित होती है। फटेहाल लोग; सिर पर पुराने जमाने के जूड़े (वेणी) बाँधनेवाली, प्राचीन माम्य शैली के लहँगे और फ्राक धारण करनेवाली तथा पाउडर-लिपस्टिक से वंचित महिलाएँ और अभिनवता के स्पर्श से अपरिचित जनता ही आस्ट्रिया में ज्यादा हैं। विएना को छोड़ आस्ट्रिया के अन्य ग्रामों में जितने लोग आस्ट्रिय भाषा बोलने-जानने वाले हैं उतने इंग्लिश फ्रेंच के नहीं ! हाँ, यदि जर्मन सीमा पर बसे हुए आस्ट्रियन जर्मन-मिश्रित भाषा जानते हैं तो इटली की सीमा पर इटली भाषा से परिचित मिल सकेंगे। ऐसा ही स्वीस सीमा का हाल समझिए।

आस्ट्रिया की स्वास्थ्यप्रद यात्रा समाप्त कर मैंने यूरोप के स्वर्ग—स्विटजरलैंड—की यात्रा आरंभ की।

२५
भूस्वर्ग स्विट्जरलैंड
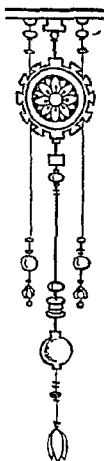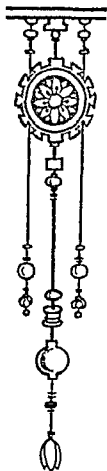
'ज्यूरिक' (Zurich)

मैंने अपनी योरप-यात्रा में आस्ट्रिया, स्विट्जर और इटली के बहुत-से प्रदेशों की सैर मोटर द्वारा की थी। इटली से स्विट्जरलैंड और आस्ट्रिया से स्विट्जरलैंड की यात्राएँ तो चिरस्मरणीय बनी रहेंगी।

आस्ट्रिया के मनोहर एवं कलाविदों के नगर सेल्सबर्ग से विदा होकर, दोपहर के लंच के समय, मैंने एक छोटे से गाँव में आकर विश्रांति ली। यह झील और पर्वत पर बसा हुआ, सघन लता कुंजोंवाला, तिकोना ग्राम था। यह एक प्रकार से आस्ट्रिया का 'पटि-तट' ही था।

आकाश को छूनेवाले पर्वतों से उतरकर भूस्तर से कुछ ऊपर उठे हुए शैल शिशु-समुदायों (टीलों पहाडियों) के बीच हमारी 'कार' लुकाछिपी करती हुई सावधानी से बढ़ रही थी। यह छोटी छोटी, किंतु हरित परिधानमयी, गिरि-मालिका भी बहुत नयन-रमणीय थी। कार की गति विधि भी बडी सुहावनी मालूम हो रही थी। कभी वह एक पहाड़ी के सिरे पर सैर कर नीचे सरपट भाग आती थी,' तो कभी उसे एकाध टीले की प्रदक्षिणा कर के सम भू भाग पर उतर आना पड़ता था। ऊपर खड़े हुए विशाल समुन्नत शैल अपने नन्हें-नन्हें शिशुओं (टीलों) के साथ मोटर का यह खिलवाड देख रहे थे।

रश्मिमाली का यौवन ढल चुका था। सांध्य अरुणिमा ने गगन पर अपनी आभा फैलाई और हमारी कार ने स्विट्जरलैंड की प्रवेश-सीमा पर आकर विश्रांति ली। यहाँ से फिर चढ़ाई शुरू होनेवाली थी। मार्ग भी सकुचित हो गया था। इस सीमांत पर हमें नव राष्ट्र में प्रवेश पाने की स्वीकृति लेना आवश्यक था।

हिमस्नात—पर्वतीय प्रकृति-सुषमा (पृ० १२८)

सेलस्पग के—ग्रामीणों का नृत्यविनोद (पृ० १२७)
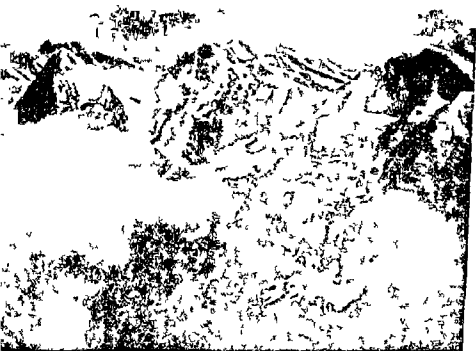
हिमसुकुटधारिणीम्—मेघ-मालिनाम् !!! (पृ० १२६)
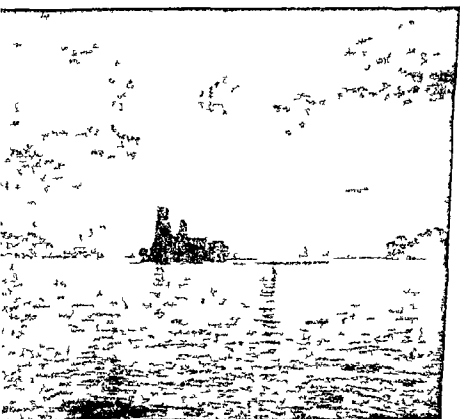
एक ओर स्वीस सैनिक संगीन लिये खड़ा था, और सामने का लौहद्वार भी बंद था।

गाड़ी रुकते ही सैनिक ने निकट आकर स्मित वदन और विनय के साथ हमसे पासपोर्ट की माँग की। पासपोर्ट लेकर वह ऑफिस में गया, और १०–१५ मिनट में वापस आकर हमें पासपोर्ट (मुहर लगा हुआ) लौटा दिया। सामने का दरवाजा खोलकर फिर स्मित मुद्रा से 'गुडबॉय' की।

दरवाजे से बाहर निकलते ही सर्वप्रथम जो ग्राम हमें दिखाई दिया, वह यद्यपि बहुत छोटा था, तथापि प्रकृति ने उसे इतनी सुंदरता से सजाया था कि मन को बरबस आकर्षित कर लेता था। अब आस्ट्रिया के रूखे सूखे पर्वत नहीं रहे थे, स्विट्जरलैंड की प्रकृति-सुषमा के पद पद पर दर्शन हो रहे थे। जिस ओर हम मुडे, उसी ओर सुंदर सुसज्जित उद्यान और छोटे-बड़े कलापूर्ण भवनों का ही दृश्य सामने आता था।

ग्राम से बाहर होते ही मार्ग के दोनों ओर अधिकांश भूमि पर अंगूर की लताओं के मंडप दिखाई देने लगे।

कहीं-कहीं जलाशय और हरे-भरे खेत उन पर्वतों के कटि-प्रदेश में, लताओं से घिरे हुए, बड़े सुहावने लग रहे थे। मार्ग के छोटे-छोटे ग्रामों और पहाड़ियों को लाँघती हुई हमारी 'कार' फिर एक समुन्नत पर्वत-शिखर पर चढ़ने को कटिबद्ध हुई। दोनों ओर पर्वत की चोटियाँ गगन-स्पर्श करना चाहती थीं। हमारा रास्ता इनके बीच होकर जा रहा था, इसलिए दोनों ओर के अन्य दृश्य नेत्र से ओझल हो गए थे। अभी तक जिन आँखों ने विस्तृत प्रांगण में स्वैर विहार कर प्रकृति का फैला हुआ लावण्य निहारा था, वे अब रूखे पत्थरों से टकराकर संकुचित दायरे में अटपटापन अनुभव कर रही थीं। सांध्य वेला, पहाड़ों के बीच का संकुचित पथ, ऊँचे-ऊँचे पेड़ और खंदकें। बड़ा भयावह दृश्य उपस्थित हो गया था। कार भी समस्त शक्ति का संचय करके इस दुर्द्धर्ष मार्ग को काट रही थी। वह जितनी ऊपर जा रही थी, अँधेरा बढ़ रहा था। जी घबराने लगा कि कब यह खुले आकाश
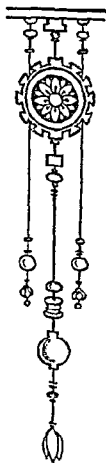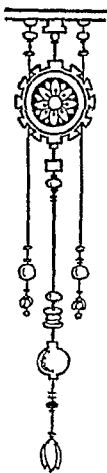
और स्वैर समीर की सैर करेगी। डेढ़ घंटे का यह अनवरत क्रम इस तिमिराच्छन्न मार्ग में भय का संचार कर रहा था। किंतु ज्यों ही कार इस भयावह मार्ग को पार कर गिरि-शृंग पर पहुँची, और वहाँ का विस्मयकारी दृश्य सामने आया, त्यों ही उस भीषणता का आतंक स्मृति-पट से क्षण मात्र में विलीन हो गया। इस बार हम वास्तव में सुरलोक पहुँच गए थे!

कई हजार फीट ऊँचाईवाले इस नयन रम्य गिरि-शिखर पर अनेक रम्य निवास-भवन, उद्यान और बिजली की चकाचौंध में आइने की तरह चमकनेवाली विस्तृत सड़कें, फुटपाँथ पर लता-मंडप और विविध सुमनों से अलंकृत वृक्षों की सुंदर कतारें, रंग-बिरंगे पुष्पों की कलामय क्यारियाँ और हजारों अलग-अलग रंगों और किस्मों की बिजली की बत्तियाँ रात में भी दिन का भुलावा दे रही थीं। उस समय रिमझिम-रिमझिम रसफुहियाँ बरस रही थीं। वृक्ष-लताओं के वर्षा और विद्युत्प्रकाश से सद्य स्नात पत्र पुष्प नयनों का रंजन कर रहे थे। हरे रंग की चिकनी और धुली हुई सड़क, जो इन शोभाओं तथा कार को प्रतिबिंबित कर रही थी, इतना सुंदर एवं मोहक दृश्य उपस्थित कर रही थी कि वर्णन करते नहीं बनता। अब तो अनेक मार्गों में ट्राम और बसों का भी आवागमन दिखाई दिया। कॉफे, रेस्टारेंट आदि की चहल-पहल, और संगीत की मधुर ध्वनि भी किसी किसी भवन से समीर के साथ बहकर चली आ रही थी।

मार्ग पर्वत के मध्य में ही अब तक जा रहा था, और १०-५ मील के बाद पर्वत के एक छोर पर हो गया था। अब तक मध्यवर्ती मार्ग होने के कारण पर्वत के निम्न भाग की कल्पना नहीं हो सकती थी, किंतु एक छोर पर आते ही इस गगन-चुंबी पर्वत के निम्न स्तर से बहनेवाली स्वीस की निर्मल-सलिला झील का अपूर्व दृश्य सामने आ गया। हम जिस पर्वत के शृंग पर बसे हुए नगर से मार्ग क्रमण कर रहे थे, ठीक उसी तरह झील के उस पार भी उन्नत गिरिशृंग माला लगातार कई मील तक चली गई थी। उन पर्वत-मालाओं पर भी वही प्रकृति

की अभिरामता का स्वर्गीय दृश्य उपस्थित था। लक्षावधि बिजलियाँ, सुंदर घनी हरियाली और विविध रंग के बड़े-छोटे भवन बने हुए थे। यह हिम-मंडित मुकुट-धारिणी आल्प्स-पर्वत-मालिका हरित वनराजि में ऊपर से नीचे तक सहस्रशः वास-भवनों को अपने हृदय-प्रदेश में नगीनों की तरह जड़े हुए हैं। और, रात में तो आकाश का समस्त नक्षत्र-समूह मानों इनसे होड़ लगाने इस जगह उतर आता है।

प्रकृति-रमणी अपने वैभवोन्माद से पूर्ण यौवन का निखरा हुआ लावण्य निर्मल-धवल-सलिला विस्तृत झील के आइने में निहारा करती है। अपने मोहक रूप और सौंदर्य की सुषमा देखने के लिए ही प्रकृति-रानी ने तटिनी के तीर पर अपना सौभाग्य-शृंगार-सहित वास्तव्य किया है। और, उस झील के प्रतिबिंब का तो कहना ही क्या!

आकाश के समस्त नक्षत्र और चंद्र को झील अपने हृदय में बिठला लेती है, और इधर सजी हुई सौध-रमणियों का चित्र भी हृदय पर अंकित कर लेती है, तब उन मंद-मंद लहरों पर एक अजीब-सा दृश्य बन जाता है। मैं अपना आपा भूलकर अतृप्त नयनों से वह दृश्य निहारता हुआ एक विचित्र आनंद-लोक में विचरण कर रहा था।

पृथ्वी पर यदि स्वर्गीय सुषमा के दर्शन करना हो, तो मानव को इस सौध-रमणी का स्वर्गीय आतिथ्य ग्रहण करने एक बार अवश्य आना चाहिए।

मील की संख्या दिखलानेवाले कई पत्थर पीछे छूट गए। हमारी कार उसी तरल वेग से अपने उद्दिष्ट मार्ग पर बढ़ी चली जा रही थी। मैं आत्मविभोर हो, सुधि भूला सा, कभी नील गगन में जटित नक्षत्रों की कमनीय कांति और कभी पर्वतीय वनराजि से झाँकती हुई मानव-वास की शोभा, गिरजाघरों पर प्रकाश का स्नान कराती हुई लक्ष-लक्ष रंग-बिरंगी विद्युल्लताओं की आभा तथा निर्मल स्रोतस्विनी की प्रतिबिंबमयी नगरी निहारता हुआ, पुनश्च मार्ग में आनेवाले ग्रामों-नगरों की चकाचौंध, और
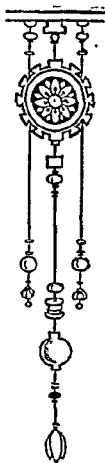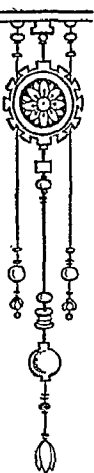
उद्यान-पुष्प-पल्लवों की सुभग योजनाओं को अनिमेष नयनों से पान करता, बढ़ा चला जा रहा था। यह शोभा लेखनी से अंकित करने का विषय नहीं, हृदय से अनुभव करने की वस्तु है।

इस प्रकार उस स्वर्गीय सुषमा की झाँकी लेता हुआ, अपने मन-ही-मन आत्मतृप्ति का अनुभव कर, रात के साढ़े दस बजे स्विट्जरलैंड के सुंदर नगर ज़ूरिक में आ पहुँचा। यहाँ के सर्वश्रेष्ठ और कलावैभव-पूर्ण होटल बोरोलॅक में आकर मैंने विश्रांति ली।

आज मुझे न तो भूख थी, न प्यास। मेरे हृदय पर आज इस भूस्वर्ग के अद्भुत एवं मनोहारी दृश्य की अमिट छाप लगी हुई थी। उसे बार बार अपने नयनों के समक्ष लाते हुए निद्रा की गोद में पड़ गया।

इसमें संदेह नहीं कि यह प्रकृति-रम्य स्विट्जरलैंड समस्त योरप का हृदय-प्रदेश है। ठीक मध्य योरप में होने के कारण यद्यपि हृदय की उपमा वास्तविक है, तथापि वैसे सृष्टि-सौंदर्य के कारण भी यह योरप में हृदय का स्थान प्राप्त किए हुए है। यह प्रदेश योरप में सबसे छोटा है। समस्त स्वीस की जनसंख्या ४० लाख के लगभग है—भारत के गोरखपुर-जिले या ग्वालियर-स्टेट के बराबर।

स्विट्जरलैंड एकदम पहाड़ियों और पर्वतों पर ही बसा हुआ राष्ट्र है, जहाँ व्यवसाय के कोई साधन प्राप्त नहीं हो सकते। इस लिए जगत् स्विट्जरलैंड को 'होटलों का देश' कह कर संबोधित करता है। यह स्वाभाविक भी है। वास्तव में देखा जाय, तो एक स्विट्जरलैंड शहरों में बसा हुआ है, जहाँ केवल यात्रियों के आवागमन जारी रहने से होटलों का रोजगार बना रहता है। निरंतर स-धन यात्रिगण, शांति की आराधना के लिए, स्वीस-प्रकृति के अंचल में आकर बसेरा करते हैं। हजारों जर्मन, फ्रेंच और इंगलिश जन केवल पहाड़ियों में बने हुए एकांत रम्य होटलों में अपना वात्सव्य बना लेते हैं, इसलिए स्वीसवासियों की प्रमुख उपजीविका का साधन होटल

हो, तो आश्चर्य ही क्या ? इन होटलों की साधन-पूर्ति के लिए दूसरे स्विट्ज़रलैंड की आवश्यकता अनुभूत होती है। वह स्विट्-ज़रलैंड ग्रामों, पर्वत के एकांत स्थलों और झील के कटि-तटों पर बसा हुआ है, जहाँ ज़रा-ज़रा-से हरित टीलों की सुविधा पाकर उन पर कुछ खाद्य पदार्थों का उत्पादन करता, एवं गाएँ और बकरियाँ रख कर दूध और मक्खन उत्पन्न करता है। इसी प्रकार पर्वत की ढालू भूमि पर, अंगूर के लता-कुंजों में, बस कर इन्हीं वस्तुओं द्वारा उपजीविका-उपार्जन करने के लिए नगर में बसे हुए धनिक स्वीस में आवागमन रखते हैं। इसी लिए मैंने इस देश को दो भागों में विभाजित करने की कल्पना की है। स्वीसयात्री इस बात को प्रत्यक्ष कर सकते हैं कि नगर के स्वीस कितने संपन्न, सभ्य, सुथरे और अप-टु-डेट हैं, और ग्रामीण स्वीस, जो नगर के ओर-छोर पर ही बसे हैं, कितने पुरातन, सीधे-सादे, साधन-विहीन और गरीब-से मालूम होते हैं। इस ग्रामवासी स्वीस-विभाग की भी भारत के कृषि-जीवियों की-सी दशा है।

कुछ समय तक ये कृषि करते हैं, और कुछ समय इन्हें भी खाली बिताना पड़ता है। जब बर्फ़ पड़ने लगती है, तब उसे हटाने और अपने पशुओं को सँभालने के सिवा इन्हें कोई काम रहता ही नहीं।

अधिकांश ग्रामीण और शहराती लोग स्वीस-होटलों में सर्विस कर लेते हैं। यह ज़रूर है कि समस्त स्वीस बहुत विनम्र, स्वस्थ, सुंदर, मृदुभाषी तथा निरंतर परिश्रमशील होते हैं। प्रकृति की निरतर समाराधना में उनका स्वास्थ्य भी सुथरा रहता है, और सुंदरता तो उनके लिए ईश्वरीय देन है। वैसे ही सारा स्वीस योरप का स्वर्ग-खंड है, और आल्प्स-पर्वत-माला तथा झील के तट पर होने के कारण उसकी शोभा सोने में सुगंध की तरह हो गई है, तथापि स्वीस-जनता में सौंदर्यानुराग और कला-प्रियता भी है। उन्होंने स्वीस की कृत्रिम शोभा सँवारने में भी इतना श्रम किया है कि निःसंदेह वह पृथ्वी का सुरपुर बन गया
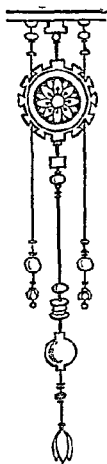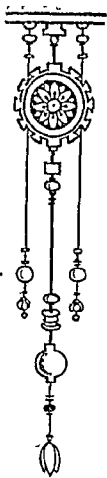
है। स्वीस-जनता बहुभाषा-प्रवीण है। वैसे उनकी राष्ट्रभाषा स्वीस है, परंतु उत्तर-प्रदेश के अधिकांश स्वीस लोगों की भाषा जर्मन है, और दक्षिण-प्रदेश की जनता फ्रेंच अधिक प्रयुक्त करती है। सीमांतवर्ती जनता उस सीमांत-प्रदेश के राष्ट्र की भाषा भी व्यवहृत करती है। जैसे लुगानो आदि के लोग इटैलियन भाषा उपयोग में लाते हैं। स्वीस-भाषा अधिकांश में जर्मन से मिलती-जुलती है। फिर स्वीस लोग निरंतर प्रवासियों के संपर्क में आते रहते हैं, इसलिए वे इँगलिश आदि भी खूब जानते हैं। पर्वतवासिनी जनता में प्रकृति से अनुराग स्वाभाविक होता है। इसलिए वे स्वतंत्रताप्रिय भी उतने ही होते हैं। वे कुसुम-कोमल हैं, तो वज्रकठोर भी हो सकते हैं। वे जितने सुंदर, सुगठित-शरीर और आरक्त-कपोल हैं, उतने ही साहस के कार्यों में भी तप्त-लौह-से हैं। उनका बर्फ पर स्केटिंग आदि कार्य जान की बाजी लगा देने का ही है। स्वीस-राष्ट्र दुनिया में बेजोड़ राष्ट्र है। उसकी शासन-शैली—जिसे 'फेडरल-रिपब्लिक' कहते हैं—आदर्श मानी जाती है। जनता को राज्यकार्य में भाग लेने का अवसर प्राप्त है। उसकी निर्वाचन-प्रणाली की यह विशेषता है कि एक-न-एक समय नागरिकों को शासन-तंत्र में सहयोग देने का अवसर प्राप्त हो ही जाता है, और प्रत्येक प्रांतीय विभाग को अपने आंतरिक मामलों में पूरी स्वतंत्रता उपलब्ध है। इसलिए योरप में स्वीस-शासन-तंत्र आदर्श माना जाता है। १५वीं शताब्दि से, जब अंतिम बार आस्ट्रिया के शासन के पंजे से यह देश स्वाधीन हुआ, लगातार अन्य राष्ट्रों ने भी इसकी सुंदरता का अपहरण न करने की दृष्टि से इसे सर्वथा 'तटस्थ' मानकर इसे स्वतंत्र ही रख छोड़ा है। युद्धों की पाशविकता से बचकर यह प्रदेश प्रकृति की निरंतर कृपा का पात्र बना रहा और अपना सौंदर्य अक्षुण्ण रख सका है।

प्रकृति के मौलिक स्वरूप के समाराधक होने के कारण स्वीसों में जितनी साहसिकता, वीरता, श्रमशीलता, सुंदरता और विनय-शालीनता है, उतनी ही धार्मिक भीरुता भी। प्रत्येक

विहगम दृश्य (पृ० १३५)
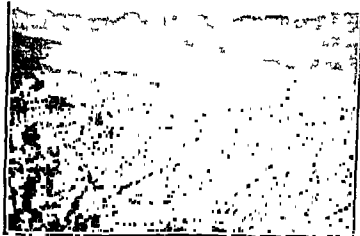
ज़ूरिक की प्रकृति छटा (पृ० १३५)
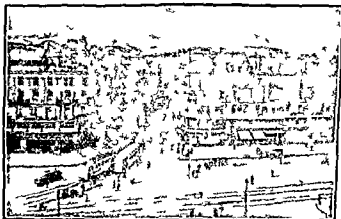
राजमार्ग की चहल-पहल (पृ० १३८)

ग्राम और नगर का गिरजाघर आराधना के समय घंटा-रव के साथ मानव-समूह से भरा रहता है। भोजन और आतिथ्य में तो स्वीस जनता का स्थान श्रेष्ठ है। इस दृष्टि से ये भारत के गुर्जर-प्रदेश के साथ रक्खे जा सकते हैं। पौष्टिक भोजन, दूध, फल और मक्खन तथा दूध से बने हुए पदार्थों में इस राष्ट्र की समानता दूसरा योरपीय राष्ट्र शायद ही कर सके। परंतु होटलों की महँगी भी वैसी ही है। यही एकमात्र इनका व्यवसाय होने के कारण इस क्षणिक आय पर ही अनेक स्वीसों की जीवन निर्भर रहता है। वस्तुओं के उत्पादन और उनके आवागमन की कठिनाई की हम कल्पना करें, तो यह महँगी भी हमारी समझ में आ सकती है। स्वीस लोगों की दूसरी वस्तु, जो समस्त भूमंडल मे प्रसिद्ध है, घड़ी है। घड़ी का रोजगार भी यहाँ बहुत बड़ा होता है। ल्सर्न, लुगानो, जिनेवा आदि में अनेक कारखानें हैं, जहाँ विपुल परिमाण में घड़ियाँ बनती हैं, और दुनिया मे 'स्वीस-मेड' के नाम से विख्यात हैं।

स्विट्जरलैंड की राजधानी 'बर्न' है, परंतु यह झूरिक की तरह् बड़ा नहीं। झूरिक इस देश का भव्य और विशाल नगर है—झील के तट पर सुंदरता के साथ बसा हुआ। जब सामने पर्वत-मालिका हिम का शुभ्राभरण धारण कर लेती है, तब इस नगरी की सुषमा बहुत नयन-मनोहर हो जाती है। यहाँ के सुप्रसिद्ध स्थानों में बोरोलक और डोल्डर-होटल अपना जोड़ नहीं रखते। 'बोरोलक' नगर के अंदर झील के सम्मुख है, और 'डोल्डर' पहाड़ी के शृंग पर स्थित है। दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, तथापि बोरोलक ऐसा सुसज्जित और कला-वैभव से परिपूर्ण है कि बड़े-बड़े राज्य-श्री-संपन्न सज्जनों को भी चकित कर देता है!

इस नगर में सभी साधन सुलभ हैं, व्यवसाय विविध प्रकार के हैं, और विद्या-वैभव-साधन-संपन्न जनों का आवास अधिक है। यहाँ का नेशनल म्यूजियम, ओरियंटलिस्टों की संस्था, पुरातत्त्व-विभाग और नेशनल आर्ट-गैलरी तो अवश्य दर्शनीय हैं। एक रोज हम सेंट्रल लाइब्रेरी चले गए। यहाँ कई
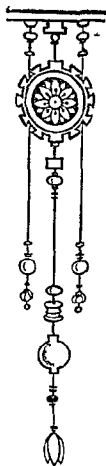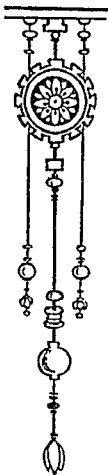
गार्डन, कैथोड्रल, सेंट-पेटर्स चर्च, फ्रेंच और इँगलिश चर्च, एक्स-चेंज-ऑफिस, बैंक, सिटी-हॉल, टाउन-ऐडमिनिस्ट्रेशन के ऑफिस, ब्रिटिश कौंसिल; डच, फ्रेंच, जर्मन, इटालियन, अमेरिकन आदि राज-दूतों के आवास-भवन भी; बड़े सुंदर हैं। छोटे होटलों में नेपचुन-होटल बहुत पसंद आया। यहाँ की शान-शौकत और सुविधाएँ, सभी सुंदर और किराया कम। गलियों की यहाँ कमी नहीं। विस्तृत राजमार्ग और उद्यानों के साथ ही गलियाँ भी नगर की पुरातनता का स्मरण कराती हैं। स्विट्जरलैंड के विषय में मैं पहले ही बतला आया हूँ कि यहाँ कृत्रिम सुंदरता की जरूरत नहीं। प्रकृति की ईश्वरीय देन से ही नर-नारी सहज-सुंदर, सुगठित और लाल सुर्ख बने हुए हैं। यहाँ की स्त्रियाँ चेहरे पर पाउडर पोतकर, लिपस्टिक लगाकर, अपनी स्वाभाविक सुंदरता विकृत नहीं करतीं। वे ईश्वर-प्रदत्त शोभा भार से ही विनत-वदना बनी रहती हैं। यहाँ और जगहों की तरह चारित्रिक कमजोरी भी कम ही मानी जाती है।

स्विट्जरलैंड अधिकतर प्रवासी जनों का आरामगाह या रैन-बसेरा है, इसलिए यहाँ सिक्कों का बड़ा झमेला रहता है। हर देश के व्यक्ति अपने सिक्कों का परिवर्त्तन कराने में प्राय. उलझे रहते हैं। 'स्वीस-फ्रेंक' में उसे बदले बिना यहाँ गति नहीं।

यहाँ के रत्नाभरणों की सुरुचि-कला-पूर्ण रचना अनेक युवतियों के कंठ में देखकर मेरी इच्छा हुई कि अपनी दोनों बालिकाओं और अनुज-बंधुओं के लिए भी कुछ संस्मरणीय समझकर ले लिया जाय।

मैं अपने साथी के साथ ज्यूरिक के एक सुप्रसिद्ध रत्न विक्रेता की दूकान पर गया। यह नगर के मध्य में अवस्थित है। दूकान अडोरा के नाम से प्रसिद्ध है। मैं अपने स्वभावानुसार एक कुरसी पर मौन बैठ गया। मेरे साथी महाशय ने, जो व्यवसाय और भाव-ताव में कुशल हैं, दूकान की मालकिन से बातें शुरू कीं। क्षण-भर में मालकिन और उनकी सुन्दर 'सेल्स-गर्ल' ने रत्नों की बहुमूल्य कला-कृतियाँ मेरे सामने रख दीं। मैं किसे पसंद

स्वीस् सुन्दरियों का एक धार्मिक जुलूस (पृ० १३८)

र पेंटर मालिक अडोरा शॉप (पृ० १२६)

अडोरा-शॉप (पृ० १२६)

ॉप की सुन्दर सेल्स गर्ल (पृ० १२६)
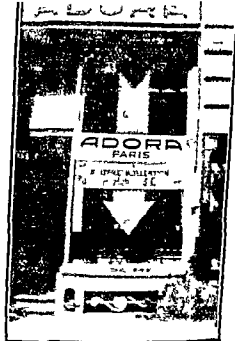
श्रीमती बिली पेंटर अडोरा शॉप की स्वामिनी (पृ० १२६)

करूँ, किसे न करूँ ? असमंजस में पड़ गया। वह मालकिन बड़ी स्मित-मधुर-भाषिणी और व्यवसाय-चतुरा थी। वह मेरी स्थिति ताड़ गई कि ये अनेकों में से अपने मन की वस्तु ढूँढ़ने की उलझन में हैं। उसने अपने 'सजेशन' देना शुरू किए। परंतु मेरे मना कर देने पर कि आप यह मुझ पर ही छोड़ दें कि मैं क्या पसंद करता हूँ, यह मेरी रुचि का विषय है, वह हँसकर, क्षमा माँग, अलग जा खड़ी हुई। हमने चार वस्तुएँ प्लेटिनम की बनी हुई हीरों की पसंद कीं, और उस श्रीमती से कीमत बतलाने को कहा। उसने हमारी सुरुचि की दाद दी, और अनाप शनाप कीमत कह दी। मैं मुस्काया, पर मेरे साथी ने उन्हें बनाना शुरू किया। अब बातें बढ़ गई थीं, किंतु उन विक्रेताओं की सभ्यता, विनयशीलता देखने ही योग्य थी। भाव-ताव में मेरे साथी ने उन्हें जरा तंग कर डाला। इधर मैं मौन रहकर उनके विवाद का मजा ले रहा था। वह मालकिन बार-बार मेरे पास आकर समझाती और कहती कि हमें इसमें अब सुविधा नहीं। वह समझ रही थी कि यह वस्तु ले रहा है, और भला आदमी है, पर यह साथी महाशय नाहक तंग कर रहे हैं। बीच-बीच में वह अपना 'भारतीयता का ज्ञान' भी बतलाती जाती थी। उसने एक बात बड़ी उत्सुकता से पूछी—"क्या यह सच है कि बादशाह जॉर्ज पंचम के राज्यारोहणोत्सव पर बैल मारे जाने के भय से अनेक हिंदुस्तानी लोगों ने विरोध किया था ?" मुझे उसके इस कुतूहल पर आश्चर्य हुआ। वह अपने हाथ में मारवाड़ी ढंग की पीतल की ठप्पेदार चौड़ी चूड़ी (बंगड़ी) पहने हुए थी। उसने बड़े गर्व से कहा—"यह देखो, मुझे भी भारतीय वस्तु से अनुराग है।" मैं उसके इस अनुराग पर हँस पड़ा। वह थोड़ी झेंपी, और मेरे हँसने का कारण पूछने लगी। मैंने बतलाया—"यह भारत के अज्ञान काल की निशानी भले ही हो, या असंस्कृत ग्रामीण नारी की नकल, परंतु सुधरे हुए भारत का यह प्रतीक नहीं।" उसे अपनी ग्रामीणालंकार-रुचि पर लज्जा आ गई।

एक ओर उसके पति महाशय तथा मिस्टर वाल्टर पेंटर खड़े
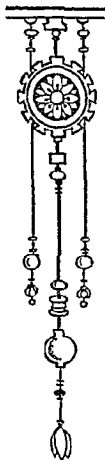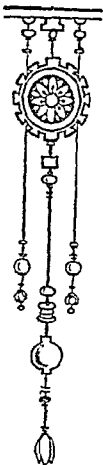
थे। वे अब तक तटस्थ-से थे, और अपनी पत्नी मिसेज लिलि पेंटर के साथ सौदा तय करने में सहयोग देने लगे। अपने साथी से तंग आ जाने पर अंततः हमने समझौता कर लिया, और वे चार वस्तुएँ खरीद लीं। एक डेढ़ घंटे की इस मुलाकात में उन पेंटर-दंपती ने विनयशीलता का, व्यवहार-चातुर्य का, खूब परिचय दिया। अब हमारे पास इँगलिश पौंड थे, उन्हें स्वीस फ्रैंक में देना था। उनके यहाँ एक यंत्र लगा हुआ था। तुरंत उन्होंने स्वीस-फ्रैंक के कितने इँगलिश पौंड चाहिए, यह हिसाब बातों में ही, यंत्र द्वारा, जमा लिया। हमने भी कागज पेंसिल लेकर मगज-पची की, ठीक बैठा। इन यंत्रों से योरप के किसी भी देश के सिक्के का एक्सचेंज (परिवर्तन) सहज ही ज्ञात हो जाता है। अगर स्विट्जरलैंड में यह न हो, तो बड़ी कठिनाई पड़े। 'अडोरा'-शॉप से इतनी देर में गाढ़ा परिचय हो गया। अब हमने उस दंपती से सस्नेह विदा ली।

इसी प्रकार स्वीस घड़ियों के विख्यात व्यवसायी ई० गुबलिन की दूकान से कुछ बहुमूल्य, सुंदर घड़ियाँ खरीदीं। इनका सौजन्य और सचाई भी हमें बहुत पसंद आई। भारत में आकर मैंने घड़ी के विषय में इनसे कुछ और काम भी लिया। उस दूकान की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही उनका व्यवहार प्रशंसनीय रहा।

ज्यूरिक के अतिरिक्त स्विट्जरलैंड के अन्यान्य प्रसिद्ध, सुंदर-सुरम्य नगर-ग्रामों की भी सैर की। लूसर्न, बर्न, लुगानो, लोज़ान, इंटरलॉकेन आदि स्थानों की सौंदर्य-सृष्टि का निरीक्षण कर आत्मतृप्ति लाभ की।

इटली से स्वीट्जरलैंड के पथ में मोटर से
यात्रा करते हुए लेखक (पृ० १४०)

प्रकृति के अञ्चल में—ल्यूसर्न (पृष्ठ १४१)

ल्यूसर्न प्रकृति-सुन्दरी झील में अपनी शोभा निहार रहा है (पृ० १४१)

२६

लूसर्न (*LUCERNE*)

प्राकृतिक सुंदरता की दृष्टि से यद्यपि समस्त स्विट्जरलैंड ईश्वर की विशिष्ट कलाकृति है, तथापि दो-तीन नगर जो प्रकृति-शोभा का निकेतन माने जाते हैं, उनमें लूसर्न का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह विश्व के क्रीड़ा-पटुओं का एक प्रकार तीर्थस्थान ही बना हुआ है। अभिनव प्रकार के समस्त खेल मनोरंजन के लिए खेलने को यहाँ सुदूर देशों से खिलाड़ियों का जमाव प्रति वर्ष हुआ करता है। लूसर्न का आरंभिक इतिहास विचित्र है। कहा जाता है कि यह एक छोटा-सा मछुओं का गाँव था। कई सदियों के पहले पादरियों (भिक्षुओं) ने यहाँ एक छोटे-से चर्च का निर्माण रूस (Reuss) नदी के तट पर किया था। बहुत समय बाद फिर मध्ययुग में इस नगर की स्थापना हुई। उस समय के ऐतिहासिक टावर, बुर्ज और चहारदिवारियों के चिह्न अब तक भी स्मृति-स्वरूप विद्यमान हैं। यहाँ के नागरिकों ने मध्ययुगीन अनेक संघर्षों से मुकाबला कर इस सुंदर प्रदेश की रक्षा की, और क्रमशः नवीन रूप में इसकी शोभा में वृद्धि की।

लूसर्न में पुरातनता और नवीनता का सुंदर संमिश्रण दिखाई पड़ता है। पुरातन बस्ती अपना स्वतंत्र रूप रखती है, और आधुनिक लूसर्न तो स्विट्जरलैंड की शोभा का आगार है। लकड़ी पर सुंदर शिल्प किए हुए दो पुल और एक टाउन-हाल, जिसमें पुराने शस्त्रास्त्र और राष्ट्रध्वज सुरक्षित हैं, प्राचीनता की स्मृति को अब भी ताजा करते रहते हैं। लूसर्न का स्वीस-स्वाधीनता के इतिहास से भी गहरा सम्बन्ध है। १३३२ ई० सन् में लूसर्न स्वीस-संघ-विधान के साथ यूरी,

२८
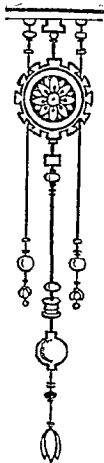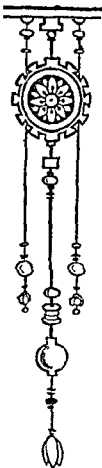
बर्न (BERNE)

ल्यूसर्न की प्रकृति-रमणी का आतिथ्य ग्रहण कर, हिम-किरीटिनी आल्प्स-पर्वत-मालिका के स्वामित्व का गौरव पाए हुई सुभग-सुरपुर-सुषमामयी स्वीस-भूमि की सुंदर राजधानी 'बर्न' के अंचल में आकर, मैंने आश्रय लिया।

समस्त स्वीस प्रदेश स्वर्गीय धाम है, तो बर्न उसकी भी राजधानी की नगरी है, उसकी शोभा का क्या कहना! वह तो स्वयं सुरपुरी ही ठहरी! ऐश्वर्य, वैभव-विलास, का आगार है। और, प्रकृति सुन्दरी ने अपनी जादू की गठरी को यहाँ के हिम-धवल गिरिशृंगों पर बखेर दिया है। उस सुषमा-राशि को धर्नीज ने भी समेट कर, यत्र-तत्र मनोहारी एवं आकर्षक रूप में, सुवर्ण में रत्न-राशि की तरह, नियोजित कर दिया है। स्विटजरलैंड में नगर की दृष्टि से, जन-संख्या की दृष्टि से, ज़ूरिक आदि स्थान अग्रगण्य हैं। इस नाप से यह बर्न द्वितीय संख्या में आता है। परंतु प्रकृति-प्रदत्त तथा मानव-विनिर्मित सुषमा से बर्न समस्त स्वीस में अपने प्रकार का निराला और अनुपम भू-खण्ड है! यहाँ प्रकृति ने मुक्तहस्त हो जो उदार सौंदर्य दान किया है, मानव भी उससे होड़ लगाने में पश्चात्-पद नहीं हुआ है। किसने किससे ज्यादा दान दिया है, यह तुलना करना कठिन है। कलाप्रिय स्वीस जनता भी मानों प्रकृति-माधुरी का अभिन्नांश है! इस समता को हम 'पेरिस' के शृंगार में नहीं पा सकते, न बर्लिन या लंदन की भव्य राष्ट्रीयता में। परमेश्वर ने पृथ्वी पर, मालूम होता है, अकेले 'स्वीट्जरलैंड' के पार्वत्य प्रदेश के साथ खास पक्षपात ही किया है। तभी तो प्रकृति के परमोपासक महाकवि 'गेटे' ने कहा है कि—मैंने अपने जीवन में जितने सुंदरतम प्रदेशों के दर्शन

स्वीस की राजधानी 'बर्न' (BERNE) नगरी का विहंगावलोकन (वायुयान से) (पृ० १४४)
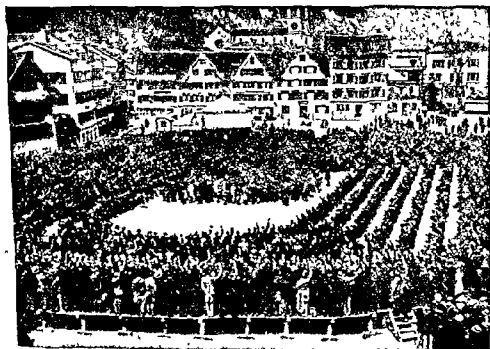
स्वीस लेजिस्लेटिव असेम्बली (पृ० १४५)
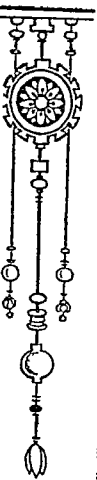
स्वीज् और अंटर्वाल्टन—इन तीन की तरह चौथे सदस्य के रूप में सम्बन्धित हुआ है।

ल्यूसर्न-लेक (झील) के आसपास का प्रदेश तो बहुत ही आकर्षक एवं मोहक है। इस विभाग की भूमि में स्वीस की मधुरतम सुंदरता ने मानों बसेरा कर रखा है। मध्य-स्वीस की आल्प्स-पर्वत-माला का आरंभ भी यहीं से होता है। इन हिम-मुकुटधारिणी भव्य-गिरि-मालिकाओं में से होकर जाना-आना यहाँ की पहाड़ी रेल ने बहुत सुलभ कर डाला है। पर्वत-शृंग पर झूलों पर बैठे हुए बिजली की कृपा से आ जा सकते हैं, उनके अंतर-प्रदेश में भी वे सरपट भागी चली जाती हैं। समस्त स्वीस की सुषमा में इन पर्वत-मालिकाओं ने तथ निर्मल-सलिला झील ने चार चाँद लगा दिए हैं, अतुलनीय शोभा की देन दे दी है। ल्यूसर्न की सुंदरता तो एक द्वीप की तरह बन गई है, इस लिए उसमें और आकर्षण आ गया है। झील की शोभा शब्दों में नहीं बतलाई जा सकती है। ल्यूसर्न की एक बार जिसने यात्रा की हो, वह इसकी मधुर स्मृति को जीवन भर नहीं भूल सकता। हिमाच्छादित पर्वत, सुभग सरिता, विस्तृत झील और उपवनों का शृंगार यहाँ अद्भुत आकर्षक हैं। जिस समय १२९१ में इटली की शपथ-ग्रहणवाली ऐतिहासिक घटना हुई, समस्त स्वीस-स्वाधीनता ने जन्म लिया, उस समय की ऐतिहासिक घटना इसी पावन भूमि पर हुई थी। छुट्टियाँ (हॉलिडे) बिताने का यह सर्वश्रेष्ठ नगर माना जाता है। झील के तट की शोभा तो सचमुच निराली है। इस ओर नए ढंग के भव्य भवन, विस्तृत राजमार्ग और लता-मण्डपों से सज्जित उपवन इतने नयन रमणीय हैं कि बरबस दृष्टि ठहर जाती है। एक शिला को काट कर सुंदर सिंह बना दिया है, इसकी भव्यता देखने लायक है, यह फ्रांस के सम्राट् लुई के लिए वीरगति प्राप्त सैनिक का पावन स्मृति-चिह्न है। आगे चल कर ही एक वैज्ञानिक पॉर्क है जहाँ हिम-निर्माण, उसके विविध रूप तथा पिघलने आदि की क्रिया किस प्रकार होती रहती है—यह दिख-

लाया गया है। लूसर्न में अधिकांश जनता रोमन-कैथोलिक है, अतएव चर्चों में जहाँ-तहाँ घंटारव सुनाई पड़ता रहता है। सागर-तटवर्ती लीडो (Lido) बाथिंग स्नान-स्थान अपने सुंदर उद्यान के साथ युवक-युवतियों की निरंतर क्रीड़ा-भूमि बना रहता है। रात में बिजली की रंगबिरंगी चकाचौंध में झील की झाँकी, रंगबिरंगे फव्वारे और प्रकाश की किरणों से धवल बने हुए लता-मण्डपों का सौंदर्य अजीब समा बना देता है। लूसर्न का आर्ट-म्यूजिक और कांग्रेस हॉल भी विशाल है। यहाँ के महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थानों में म्युनिसिपल थिएटर, चौपल-ब्रिज जिस पर पानी से चलने वाली घड़ी लगी हुई है, पुराना टाउन-हॉल जिसमें ऐतिहासिक वस्तुओं का संग्रह है, खुले गगन के नीचे होनेवाला कन्सर्ट, कजीनो, टेनिस-ग्राउण्ड आदि हैं। कैथोलिक चर्च भी इस जगह पर अनेक हैं, इस कारण लूसर्न में जहाँ-तहाँ रखी हुई ईसू की मूर्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। एक-दो प्रोटेस्टंटों के चर्च भी हैं। ग्लेशियर गार्डन (म्यूजियम के साथ), आर्ट और क्रॉफ्ट्स का म्यूजियम इत्यादि लूसर्न के स्थान दर्शनीय हैं। विलियम टेल की ऐतिहासिक भूमि लूसर्न के दर्शन न किए गए तो स्वीस-यात्रा अधूरी ही माननी होगी।
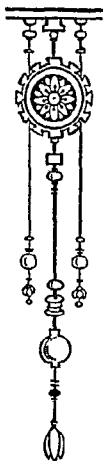
बर्न (स्विट्जरलैंड की राजधानी , के मध्य-गवर्नमेंट बिल्डिंग्स (पृ० १४५)

किए हैं, उनमें 'बर्न' अतुलनीय सर्वश्रेष्ठता रखता है। बर्न जिन सौध-शिखरों पर बसा हुआ है, उन पर्वतों के कटि-तट पर 'आर' नदी ने अपने प्रवाह से भव्यता में चार चाँद लगा दिए हैं, मानों गिरिमालिका ने कटि-प्रदेश में शुभ्राञ्चल धारण किया है। जिस ओर जाइए, उसी ओर यह निर्मल जलधारा पर्वत के निम्न भाग में लिपटी हुई दिखाई पड़ती है। 'आर' नदी भी 'बर्न' की सुषमा पर इतनी मुग्ध हो गई है कि निरंतर अंचल पसारे प्रवहमान है! कहीं-कहीं तो यह इतने निम्न स्तर में लुका-छिपी-सी करती है कि ऊपर से देखने वालों में भय-संचार कर देती है, और कहीं ऐसे वेग से बढ़ी चली जा रही है कि ऊपर से कोई 'शोभा का खण्ड' (सुषमा का अंश) मिल जाय तो अंचल में छुपाए फौरन ही भाग जाय—कोई छीन न ले! पर्वत के तीन बाजू से उसका सख्त पहरा बैठा है।

'बर्न' फव्वारों और वन-वीथियों का नगर है, प्रकृति का हरा-भरा उद्यान है! और, नगर-रचना के सौष्ठव को देखते हुए स्वीस-जनता की कला-प्रियता का उत्कृष्ट नमूना है! फिडलर-केपिटल होने के कारण समस्त यूरोप में 'बर्न' ख्याति-प्राप्त नगर है। यद्यपि इसकी प्रगति में केवल ७०० वर्ष पूर्व का इतिहास है, तथापि इस थोड़े-से अवसर में ही छोटी-सी बस्ती से एक उन्नतिशील, आदर्श, स्वतंत्र राष्ट्र का स्वरूप इसे प्राप्त हो गया है। अनेक शताब्दियों के निरंतर संघर्ष में रहते हुए भी इसने अपने मौलिक रूप और स्वतंत्र अस्तित्व को अक्षुण्ण बना रखा है। इस संघर्ष या अस्तित्व तथा निर्माण एवं प्रगति में किसी राजकृपा का श्रेय नहीं है, इसके भाग्य-निर्माण में केवल बर्नीज् जनता के साहस और शौर्य का ही सहयोग रहा है, अनेक महत्त्वपूर्ण बलिदानों द्वारा ही अपनी स्वाधीनता की रक्षा की है। एक बार १७९० में नेपोलियन के आक्रमण से यहाँ के पुराने शासन-विधान का अंत जरूर हुआ; किन्तु इस रोमेंटिक भव्य नगर का, तथा स्वाधीनता-प्रिय जनता के अदम्य साहस एवं कला-प्रियता का—जो बर्नीज लोगों की नैसर्गिक अथच
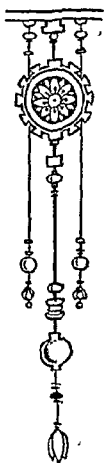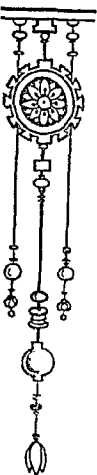
ऐतिहासिक विशेषता है—अंत नहीं हुआ। जनता की कला और सौंदर्य-प्रिय मनोवृत्ति का तो यहाँ पद-पद पर अनुभव होता है।

ग्रीष्मकालीन बर्न की शोभा बहुत ही मनोमुग्धकारी हो जाती है, अनेक सुमन लता-मण्डपों की हरीतिमा से आच्छादित जनावास शोभा-धाम बन जाते हैं। राज-वैभव और कलासे मण्डित *गिल्ड-होसेस्* तथा *पेट्रिशियन्स के भव्य प्रासाद* एक बार दर्शनीय हैं; परंतु आधुनिक प्रासादों में नवीन बर्न के प्रभावोत्पादक भवनों से इनकी तुलना करना व्यर्थ है। वे अपनी रचना में निरालापन रखते हैं और यहाँ के नागरिकों की सद्-भिरुचि तथा *कला-शृंगार* की आकर्षक विशेषता के नमूने ही हैं। विशाल-केथोड्रल, टॉवर, भव्य टाउन-हॉल, अनेक कला-पूर्ण फव्वारे और रम्य मनोहर उद्यान और वनराजी, मनोरंजन तथा खेल-कूद के स्थान भी, सुंदरता में एक दूसरे से स्पर्धा करते हैं। बतलाया जा चुका है कि सृष्टि-सौंदर्य की समता करने के लिए बर्न आदर्श एवं आकर्षक मनोरम चित्र की तरह उपस्थित है। और, यह *'आर' नदी*—जो निरंतर *ऑल्प्स-पर्वत-माला* से शक्तिसंचय कर प्रवाहित हो रही है—मानों नीचे के प्रदेशों में उसका वितरण करने जा रही है। इस पर्वत-श्रेणी में बर्न-प्रदेश बहुमूल्य नगीने की तरह जटित हुआ है। यद्यपि इसके चारों ओर नवीनता और उपनगरों की शोभा बढ़ गई है, फिर भी बर्न ने अपनी पुरातनता को हृदय में एक गौरव का स्थान दे रखा है। स्वीस् गवर्नमेंट के प्रभावोत्पादक भवनों, परराष्ट्र-दूतों के प्रासादों और कलामय उद्यानों के रहते हुए भी ७०० वर्ष पूर्व के स्मारक स्थानों का अस्तित्व यथापूर्व है। प्रति वर्ष आल्प्स के इस सुवर्ण द्वार बर्न में हजारों यात्रिगण आते ही रहते हैं। कला का उत्कृष्ट नमूना ऐतिहासिक मध्ययुगीन फव्वारा, मध्ययुगीन चर्च, इसके अतिरिक्त बुवेनबर्ग का स्मारक (Victor of Murten), कैथोलिक चर्च, वॅर्ल्ड का पोस्टल स्मा-रक तथा सुंदर उद्यान, पॉर्लमेंट के आकर्षक प्रासाद, एक कला-

थर्न के विशाल काय टॉवर पर लगा हुआ राशिचक्र, तथा सूर्य की
गति विधि दर्शक घड़ा। पृष्ठ १४७)
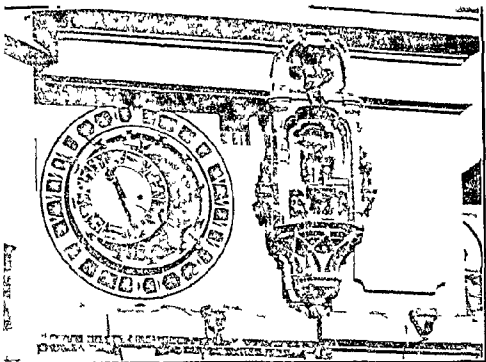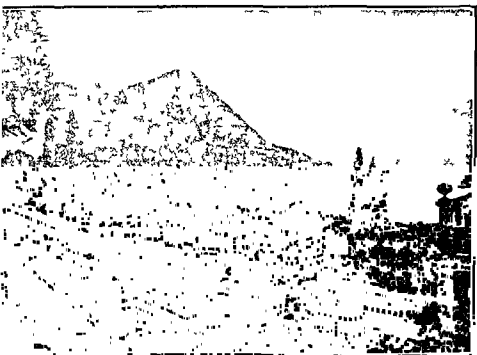
नयनमनोहर हलुगानो की एक झाँकी (पृष्ठ १५१)

मयी सुंदरी के हाथों की झारी से 'हाला' की तरह झरता हुआ अन्ना-सैलर नामक फव्वारा, पश्चिम विभाग का टॉवर, पुरातन केथोलिकों का चर्च, नागरिक भवन (हॉल १४०६–१४१६) जो सुंदर गोथिक स्टाइल से निर्मित है, इसके आगे पुनः १५वीं शताब्दी में निर्मित सुंदर फव्वारा आदि बहुत ही मनोहारी एवं दर्शनीय वस्तुएँ हैं। इसके बाद यहाँ एक और वस्तु है जिसमें भारतीयता का दर्शन होने लगता है। १६वीं सदी में निर्मित, नगरद्वार की तरह बना हुआ, एक विशाल समुन्नत टॉवर है। इस पर भारतीय ज्योतिर्गणना की दृष्टि से १२ राशियों के वास्तविक स्वरूप वाले चित्रों की एक बड़ी घड़ी लगी है, जो चंद्र-सूर्य की गतिविधि और राशि-परिवर्तन की सूचना तथा दिन-मास की सूचना अंक-परिवर्तन (चित्र-परिवर्तन) से देती है। यह अत्यंत प्रभावशाली रचना है। इसका अलार्म इतने जोर से बजता है कि नगर-भर में सुनाई देता है। इनके अतिरिक्त—होटल-डि-मस्त्यू, ब्रिज, आर्टगेलरी, ऐतिहासिक म्यूजियम, एज्यूकेशनल प्रयोगशाला, अल्पेन म्यूजियम जिसमें नेचरल-हिस्ट्री म्यूजियम भी है, स्वीस् की राष्ट्रीय लाइब्रेरी, फेडरल-मिण्ट-ऑफिस, हाई स्कूल, इंगलिश चर्च, कजीनो, रुडोल्फ-स्मारक, एक हाथ में तुला और दूसरे में खड्ग लिये कलापूर्ण मूर्ति 'जस्टिस फव्वारा' (फाउण्टेन ऑफ् जस्टिस्), अत्यन्त प्राचीन वायडिक चर्च, रायफल फाउण्टेन तथा विशालकाय युनिवर्सिटी का भवन और सामने ही अल्बर्ट वॉनहिलर के स्मारक की सुघड़ मूर्ति, बर्घर हॉस्पिटल और अत्यंत सुंदर रोजेन गॉर्डन के अलावा भी अनेक मनोहर पार्क, म्यूजियम, शिक्षणशाला तथा क्रीड़ा-भवन, थियेटर, चर्च, स्मारक आदि अनेक स्थान हैं जो बर्न की दर्शनीय आकर्षक वस्तु हैं। बर्न में सड़क पर फुटपाथ भी आच्छादित हैं जिनपर पथिकों को ग्रीष्म के आतप और वर्षा के झोंके से बचने की सुविधा है। प्रत्येक राजमार्ग के मोड़ और चौराहे पर सुंदर-सी मूर्ति का फव्वारा और कलामयी क्यारियों का छोटा-सा कुसुमित उद्यान भी बना हुआ है। समस्त स्वीस में यदि प्रकृति-वैभव
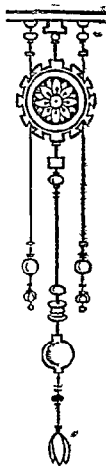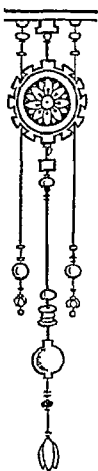
की विपुलता है तो 'बर्न' में प्रकृति-वैभव के साथ राज-वैभव भी होड़ लगा रहा है।

बर्न से कुछ आगे चलकर पार्वत्य प्रदेश में जलप्रपातों और हरित वन-राजी की शोभा से आवृत 'इंटर लॉकेन' (Inter Laken) नामक छोटा-सा ग्राम है जो स्वीस्-झील की दो धाराओं के बीच में बसा हुआ है। यह खिलाड़ियों का, युवक-युवतियों की टोली का, शिल्प और कारीगरों का, जवाहरात आदि का आकर्षक स्थान हो गया है। स्केटिंग के लिए न जाने कितने युवा-मानव यहाँ बराबर आते रहते हैं, इस लिए छोटा-सा ग्राम होकर भी प्रख्यात है। चारों ओर सौध-शृंग शुभ्र हिम से स्नान कर रवि-रश्मि से रत्नों की तरह चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं। बिजली की रंगबिरंगी चकाचौंध में प्रपात के जलकणों का वर्ण देखकर तो वहाँ से हटने का जी नहीं चाहता, एक अजीब दृश्य बन जाता है। छोटा-सा ग्राम होकर भी यह सौंदर्य का निकेतन है। इसी लिए मैंने कहा है कि स्विट्जरलैंड का वर्णन शब्दों से करना कठिन है; वह प्रकृति का लीला-धाम है—भूस्वर्ग है!

•

स्विटजरलैंड की स्वर्गीय सुषमामयी भूमि (लुगानो) (पृ० १४८)

१८
लुगानो (स्विट्जरलैंड)

यह कह चुका हूँ कि स्विट्जरलैंड समस्त योरप-खंड में निःसंदेह भूस्वर्ग है। इस भूस्वर्ग के किसी भी ग्राम, नगर या शून्य भू-भाग पर ही चले जाइए, प्रकृति की अभिरामता पर आपका मत्त मन-मयूर नाचने लग जायगा। समस्त स्वीस देश दो प्रकार से बसा है—कहीं समतल भू-भाग पर नगर और ग्राम बसे हैं, और कहीं निरंतर प्रवाहमयी निर्मल-सलिला झील के दोनों ओर क्रमबद्ध चली जाने वाली शतशः छोटी-बड़ी ऊँची-नीची पर्वत-मालिकाओं पर—प्रकृति की कमनीय कुंजों में सुंदर आवासों से युक्त—ग्राम और मनोहर नगर बसे हैं।

कुछ लोगों का मत है कि स्वीस-भूमि में सबसे सुंदर स्थान 'लूसर्न' है। यात्रिगण प्रायः इसी ख्याति-लब्ध स्थान को देखकर सारी स्वीस-शोभा की कल्पना करके चले जाते हैं। परंतु बहुतों का मत है कि इस देश का सुंदर ग्राम 'लुगानो' है।

ज़ूरिक, बर्न और लूसर्न के निरीक्षण के अनन्तर मैंने विचार किया कि 'लुगानो' भी देखा जाय।

ज़ूरिक् से लुगानो के लिए रेल से ८-९ घंटे का मार्ग है। मार्ग की पर्वतमाला को लाँघती हुई और उनकी दीर्घकाय उदर-दरी में घुसती हुई ट्रेन सरपट भागती चली जाती है। मार्ग का दृश्य भी अत्यंत नयनमोहक है। सैकड़ों माइल तक मार्ग के दोनों ओर अँगूर की लताएँ, हरे-भरे अँगूर के गुच्छों से लदी हुई, झूम रही हैं। उनके बीच-बीच विविध रंगों की पुष्प-लताओं से आच्छादित भवन और छोटे तालाब बड़े मनोहारी मालूम होते हैं। ज्यों-ज्यों गाड़ी स्विस्-सीमा के मध्य में चली जा रही थी, वह पर्वत के अंचल में सर्पाकार गति से बड़ी भली लग रही थी। सहसा वह गिरिकंदरा में वेग के साथ घुसी, अंदर
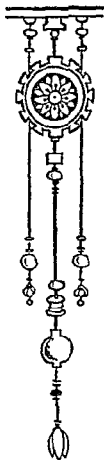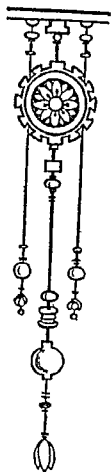
हैं। इटली का एकमात्र भव्य भवनवाला ग्राम 'हिल डेस्टा' तो समस्त योरप में विख्यात है। इस एकमात्र होटल में 'चाय' की आराधना करने विश्व के अनेक अमीर, सम्राट् और सुप्रसिद्ध मानव आ चुके और आते रहते हैं। उस पुनीत, आकर्षक भूमि के दर्शन का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ है। यह समस्त प्रदेश ही प्रकृतिरम्य है।

मालिका और सुभग वन
राजा (एकार्नी ग्राम)
(पृ० १५५ से १५७)
३—लुजान का सॅंट फ्रैंसिस
भवन। (पृ० १५५ से
१५७ तक)
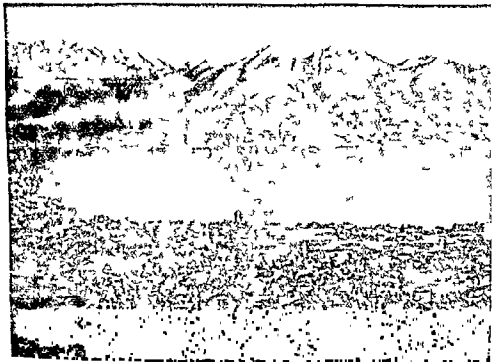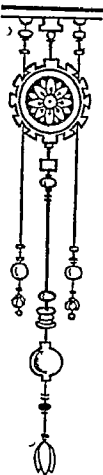
से अलंकृत कर रहे हों, उस समय इन पर्वतों पर ऊपर से नीचे बसे हुए हरे-भरे उद्यानवाले ग्राम भी आकाश से स्पर्धा करने लगते हैं। ये भी रंग-बिरंगी रोशनी से, तारों की झिलमिल की तरह, भू-मंडल पर आसमान का मानचित्र बना देते हैं। ऐसे अवसर पर यह मौन सरोवर भी जी भरकर शोभा-पान करके अपने हृदय पर सारा चित्र अंकित कर लेता है। कौन किससे बढ़कर है, और किसकी शोभा की किससे तुलना की जाय, यह निर्णय करना बुद्धि से परे का विषय हो जाता है।

दिन में ही जब प्रातःकाल रवि-रश्मि इन हिमकिरीटिनी गिरि-मालिकाओं को नहला देती है, तब इंद्र-धनुष से विविध वर्ण के अंबर धारण कर वे ग्राम शोभा के निकेतन बन जाते हैं। फिर झील अपने वृक्षःस्थल पर अभिनव चित्र अंकित कर लेती है। यह भी अजीव दृश्य हो जाता है। लुगानो का एक दृश्य और भी अद्भुत होता है। जिस समय कुहरा छा जाता है, समस्त पर्वतों पर एक हल्की-सी शुभ्र चादर फैल जाती है; तब इन रंग-बिरंगे भवनों की, पर्वतों की और झील की छवि देखते ही बनती है। इस समय प्रायः प्रकाश के लिए बिजली भी खोल दी जाती है। कुहरे की इस झीनी चादर में प्रकृति-रानी 'अंचल में दीप छिपाए, शशिमुख पर घूँघट डाले' मानों अपने प्रिय की खोज करने निकली हो, ऐसा मालूम होती है। सुरपुर की सुषमावाली यह नवेली प्रकृति-बाला लुगानो के लावण्य में चार चाँद लगा देती है। आस-पास के ऊँचे-नीचे शिखरवाले अन्य पर्वत भी सुंदर मालूम होते हैं, मानों सौध-रमणी अपनी हमजोली सहेलियों क साथ, जो सभी सफेद चादर ओढ़े घूँघट काढ़े खड़ी हैं, प्रकृति-वधू का शृंगार निरखने आई है, या शोभा बढ़ाने को सजी हुई लजीली रूप-रंभाएँ खड़ी हुई हैं। मैं चाह-भरे अतृप्त नयनों से उस रूपराशि गिरिमाला को देखा करता, और उसका एक चित्र अपने मानस-पटल पर अंकित कर लेता।

लुगानो-झील के किनारे-किनारे सड़क और उद्यान की मालिका-सी बनी चली जाती है। नीचे झील के तट पर खड़ा

होने पर या नौका में जल-विहार करते समय लुगानो का एक दृश्य हृदय पर अमिट छाप लगा देता है। यहाँ भी होटलों की ही भरमार है। सैलानी लोगों का प्रायः आवागमन बना रहता है। छोटा-सा, किंतु बहुत ही सुंदरता से सजा हुआ एक बाजार है, जहाँ अनेक दूकानें घड़ियों की ही हैं। कुछ दूकानों पर इटली की कला-पूर्ण विविध वस्तुएँ मिलती हैं। लकड़ी और चमड़े पर काम की हुई अनेक डिजाइनों की बहुत-सी वस्तुएँ मिलती हैं। यहाँ की भाषा प्रायः इटली और स्वीस है। सीजन में अनेक इटैलियन अपनी दूकान चलाने यहाँ आ जाते और सीजन खत्म होते ही चले जाते हैं। दिन-भर अनेक बिजली की लिफ्टें पर्वत-शिखरस्थ आवास-भवनों के यात्रियों को नीचे लाती और ऊपर पहुँचाती हुई उतरती-चढ़ती चली जाती हैं। यह दृश्य भी दर्शनीय हो जाता है। स्कूल और गिरजे के अतिरिक्त या तो कुछ दूकानें या होटलों के भव्य प्रासाद ही दिखाई देते हैं। ये भी अपनी सुंदर सजावट से रईसों के महलों को लज्जित करने-वाली शान-शौकत के हैं। ग्राम में झील के तट पर छोटे फव्वारों और उनके आस-पास उद्यानों की शोभा भी अद्भुत है!

गोल्फ, स्वीमिंग बॉथ, लुगानो का केथोड्रल और गलियों-वाला बाजार—ये दर्शनीय स्थान हैं। लुगानो की 'मौंटेन्री' पर फैले हुए इटैलियन प्रदेशों की भी हमने सैर की। कहीं नौका से जल-तरंगों में हृदय-तरंगें मिलाते हुए, कहीं 'कार' द्वारा नागिन की तरह बल खाती हुई सड़कों से सैर की। कुछ क्षणों में ही क्रमशः ओरिया, सोरेंजो, स्ट्रेटो-डे-लेवेना, मोरकोटे, पोंटे-डि-मेलीडे, मामेटटे-फारदेलो, गेंड्रिया, कॅपियानो, कार्सा, कोमो, हिला-डेस्टा और हिला-कारे-लोटा आदि स्थानों की मनोमुग्ध-कारी यात्रा की। हिला-डेस्टा, हिला-कारेलोटा और कोमो की सैर तो जीवन-भर विस्मृत न हो सकेगी। इन (कहने को) छोटे-से ग्रामों की रचना और प्राकृतिक सुन्दरता इतनी मनोहारिणी है कि हृदय वहाँ से हिलने को न चाहेगा। ये ग्राम कलामय इटली की स्वर्गीय सुषमा से परिपूर्ण

?ρ

लूजान (*LAUSANNE*)

ऐतिहासिक सेल्टिक (Celtic) नगर लूजान, रोमन-कालीन, सुंदर स्थान है। यह स्वीस-भूमि के अन्यान्य नगरों की तरह सुरम्य झील के तट पर बसा हुआ है। आज के इसी नवीन-तम मनोहारी नगर में पुरातन ऐतिहासिक भूभाग और कलामय भवनों के भी दर्शन किए जा सकते हैं, यद्यपि ५वीं सदी मे यह नगर नष्ट-भ्रष्ट कर डाला गया था, परंतु छठी सदी के अंत से पुनः बर्गण्डियन के बिशपों के निरीक्षण में आकर यह सीटे (Cite), बौर्ग (Bourg) और सेंटलॅरेण्ट (Sant-laurent) की पर्वत-मालिका में पुनः नवीन रूप में बसाया गया और स्वीस शासनतंत्र का १५वीं शताब्दि मे यह प्रमुख नगर माना गया। इस पर सेवॉय के काउण्ट और बिशपों का प्रभुत्व रहा है। इसके बाद १५३६ मे आगे चलकर यह बर्न के अधिकार मे आ गया और अंततः १८०३ में लूजान हौड फीड छावनी का केपिटल बन गया!

फ्रांस और इटली के राजमार्ग पर आ जाने तथा धनिक प्रदेशों के मध्यवर्ती होने से, प्रभाकर की रश्मिमाला से प्रकाशित झील पर बसा हुआ, लूजान एक बार पुनः तुरंत अपने वैभव से परिपूर्ण बन गया।

फिर तो अनेक विदेशी यात्रियों का आवागमन इस जगह होता रहा। अनेक विख्यात विद्वानों ने यहाँ बस कर अपनी अमर रचनाएँ झील के अंचल मे पूरी की हैं।

गिबन ने लगातार ४० वर्ष तक यहाँ इस प्रकृति के प्रेरक स्थान में बसेरा कर अपनी विख्यात कृति 'रोमन-साम्राज्य के उत्थान-पतन का इतिहास' १७८७ में समाप्त किया है। वॉल्टेअर ने भी 'झेढ' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना यहीं की है। नेपो-

११

लूज़ान (LAUSANNE)

ऐतिहासिक सेल्टिक (Celtic) नगर लूज़ान, रोमन-कालीन, सुंदर स्थान है। यह स्वीस-भूमि के अन्यान्य नगरों की तरह सुरम्य झील के तट पर बसा हुआ है। आज के इसी नवीन-तम मनोहारी नगर में पुरातन ऐतिहासिक भूभाग और कलामय भवनों के भी दर्शन किए जा सकते हैं, यद्यपि ५वीं सदी में यह नगर नष्ट-भ्रष्ट कर डाला गया था, परंतु छठी सदी के अंत से पुनः बर्गेण्डियन के बिशपों के निरीक्षण में आकर यह सीटे (Cite), बौर्ग (Bourg) और सॅंटलॉरेण्ट (Sant-laurent) की पर्वत-मालिका में पुनः नवीन रूप में बसाया गया और स्वीस शासनतंत्र का १५वीं शताब्दि में यह प्रमुख नगर माना गया। इस पर सेवॉय के काउण्ट और बिशपों का प्रभुत्व रहा है। इसके बाद १५३६ में आगे चलकर यह बर्न के अधिकार मे आ गया और अंततः १८०३ में लूज़ान वौड कौड छावनी का केपिटल बन गया!

फ्रांस और इटली के राजमार्ग पर आ जाने तथा धनिक प्रदेशों के मध्यवर्ती होने से, प्रभाकर की रश्मिमाला से प्रकाशित झील पर बसा हुआ, लूज़ान एक बार पुनः तुरंत अपने वैभव से परिपूर्ण बन गया।

फिर तो अनेक विदेशी यात्रियों का आवागमन इस जगह होता रहा। अनेक विख्यात विद्वानों ने यहाँ बस कर अपनी अमर रचनाएँ झील के अंचल मे पूरी की हैं।

गिबन ने लगातार ४० वर्ष तक यहाँ इस प्रकृति के प्रेरक स्थान में बसेरा कर अपनी विख्यात कृति 'रोमन-साम्राज्य के उत्थान-पतन का इतिहास' १७८७ में समाप्त किया है। वॉल्टेअर ने भी 'झेड' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना यहीं की है। नेपो-

लियन भी दो बार सेण्टबर्नार्ड के पार करने के प्रथम यहाँ आकर रहा था। इतना ही नहीं, महाकवि बॉयरन् को भी इस सुदर भूमि ने स्फूर्ति दी है। उसने अपनी प्रिय रचना 'प्रिज़नर ऑफ शिलोन' की पूर्ति लूज़ान के सुदर पोर्ट 'उशी' (Ouchy) मे की है।

लूज़ान की युनिवर्सिटी, यूरोप मे अपने ढग की एक स्वतत्र सस्था है। वैसे लूज़ान तो स्पोर्ट (खेल) और शिक्षण का केन्द्र स्थल ही माना जाता है। उसपर भी यहाँ की ऐतिहासिक युनिवर्सिटी में अनेक प्रसिद्ध विद्वानों और विख्यात व्यक्तियों ने आकर यहाँ के साहित्य को चारों ओर विस्तृत किया है। अनेक प्रौढ रचनाओं के जन्म देने का श्रेय इस सुदर प्रकृति-सुषमामयी भूमि को है। स्वीस-झील और पार्वत्य शोभा तो इस नगर को भी उतनी ही प्राप्त है, जितनी स्वीस के अन्यान्य मनोहारी स्थानों को सुलभ है। लूज़ान द्राक्षलता मण्डपों से आवृत है। झील के आस पास के हरित भूभाग पर द्राक्षा को हरित लताएँ अगूर के सुभग झूमर लटकाए प्रकृति-सुदरी के स्वागत के लिए वन्दनवार की तरह मालूम होती हैं। लूज़ान के मनोरम उद्यान और हरित वनराजी में द्राक्ष लता की छटा अनुपमेय है।

प्राचीन लूज़ान मे केथीड्रल की दक्षिण भागवाली पोर्च पुरातन स्थापत्य-कला का एक प्रभावोत्पादक नमूना ही है, जिसमें अब म्यूजियम स्थापित है। प्राचीन बिशपों के पैलेस की इमारत भी अपनी भव्यता से ऐतिहासिक घटना की स्मृति को ताजी कराने वाली है। अन्यान्य दर्शनीय स्थानों मे झील के तटवर्ती केथीड्रल, नगर के मध्यवर्ती चर्च तथा सेण्ट फ्रेन्सिस का स्थान, टाउन-हाल और उसके सामने का स्मारक, एव सुदर पेलूड फव्वारा, तथा आगे चलकर फेडरल लॉ-कोर्ट और सौंदर्य का आगार मनोरम उद्यान भी आकर्षक है। यह प्रवासी को क्षणभर विश्रान्ति के लिए सहसा आमत्रित कर लेता है। छावनी का कोर्ट हाउस और क्लासिकल कॉलेज, एन्शट एकेडेमी भवन, मेडिकल स्कूल्स, कांटिनल-म्यूनियम का भवन तथा

उशी-पोर्ट का दृश्य तो एक अजीब वस्तु है। वहाँ की उन्मानमयी झील का तट और आल्पस की पर्वत माला हिमाच्छादित शृंग को लिये रविरश्मि मे रजत परिधान किए विलक्षण मालूम होती है, और रात मे रजत-चन्द्रिका छिटकने पर अपनी अपूर्व आभा फैला देती है।

मून रिपोस-पार्क की यदि आपने लूज़ान मे सैर न की तो आपकी यात्रा सर्वथा निरर्थक हो जायगी। यह पार्क इतना मनोमोहक है कि वर्णन करना कलम का विषय नहीं। प्रकृति की इस पर कृपा है, और लूज़ानवासियों की कलाप्रियता एवं सुरुचि का यह उत्कृष्ट नमूना है। एक शब्द मे लूज़ान युवकों का नगर है, उसमें यौवन का उन्मादमय सौंदर्य है, मादकता है। शिक्षा का प्रधान केन्द्र-नगर होने के कारण युवक-युवतियों का समूह भी इसके नामानुरूप ही है। अनेक संस्थाएँ, राजकीय एवं सार्वजनिक रूप में, शिक्षण के विभिन्न अंगों मे ज्ञान-प्रसार के लिए स्थापित हैं। चेटू डि-सेंट-मेरी नामक स्थान मे यहाँ की शासन-संस्था का ऑफिस है। होस्पिटिल्स-बिल्डिंग, रेडियो हाउस, लॉयब्रेरी, अभिनव अलेम्पिया, स्वीमिंग पूल, भव्य गोल्फक्लब, गोल्फकोर्स, और सेंट-स्केफोरिन का गोथिक स्टाइल का चर्च आदि लूज़ान की यात्रा मे दर्शनीय प्रमुख-स्थान है। जीनेवा से स्टीम-बोट द्वारा लूज़ान की यात्रा करने वालों को झील का और उसके आसपास की हिमाच्छादित पर्वतराशि का सुंदर दृश्य भी दिखाई देता है। उशी-पोर्ट से एक फ्नीक्यूलर रेलवे द्वारा लूज़ान मे पहुँचा जाता है। लूज़ान, पर्वतों के शृंग पर, ऊँची-नीची हरित वनराजी में, झील में, झाँकता हुआ बड़ा ही सुहावना मालूम होता है। रजत रात्रि का दृश्य तो बहुत ही मादक मधुरिमा उत्पन्न करने वाला है।

इस प्रकार स्विटजरलैंड की चिरस्मरणीय [illegible] क्रमश जर्मनी, हॉलैंड, इङ्गलैंड, फ्रांस, [illegible] राष्ट्रों के अवलोकनार्थ बर्लिन के पथ पर [illegible] से आगे बढ़ा।